TIGHT BINDING BOOK

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_176797

UNIVERSAL
LIBRARY

अंतहीन-अंत

लेखक तथा प्रकाशक
श्री उदयशंकर भट्ट
५, कृष्णागली, लाहौर।

प्राप्तिस्थान
पंजाब साहित्य मन्दिर
सैदमिट्ठा बाज़ार, लाहौर।

द्वितीय संस्करण]   १६४२   [मूल्य ।।

मेरा वक्तव्य—

'अंतहीन-अंत' की तरह और भी ऐसे नाटक लिखे गये हैं, ऐसा मुझे याद नहीं पड़ता। मैंने बहुत से नाटक पढ़े हैं; परन्तु इस नाटक को लिखने से पूर्व मैं एक और नाटक इसी प्रकार का लिख गया हूँ। 'वीणा' इन्दौर के एकांकी नाटकांक में 'असली और नकली' नाम से एक नाटक ऐसा ही मैंने लिखा है। उस नाटक का कथानक इस प्रकार है:—

'एक गरीब नाटककार ने किसी 'एमेच्यौर' कम्पनी के लिए नाटक लिखा। डायरेक्टर को वह नाटक काफ़ी पसन्द आया। जब नाटक के 'रिहर्सल' का समय हुआ तो मुख्य-नायक बीमार पड़ गया। नाटककार को स्वयं उसमें भाग लेने के लिये मजबूर किया गया। इससे पूर्व यह जान लेना चाहिये कि नाटककार चिंतन ने अपनी प्रकृति और इच्छा के विरुद्ध विलासिता के ढंग से वह नाटक लिखा था। उसकी एक पत्नी थी और दो बच्चे। दोनों कहीं गाँव में रहते थे पिता के घर। पिता ने एक बार क्रोध में आकर लड़की को झिड़का। इस पर वह बार बार पति को पत्र डालने लगी कि—"वह अब बिलकुल अनाथ हो गई है। कोई उसका रक्षक नहीं है।" नाटककार ने स्त्री को सहानुभूति पूर्ण पत्र में उत्तर देते हुए लिखा कि—मैं स्वयं विपत्ति-ग्रस्त हूँ। रुपया होते ही तुम्हें बुला लूँगा, आदि आदि।'

इधर नाटककार को पार्ट लेने के लिये मजबूर किये जाने पर नाटक में उसे विलासी का अभिनय करना पड़ा। वह नाटक कर रहा था। उसकी प्रेयसी बार बार उसे प्रेम की धारणाओं के अनुसार अपनी ओर आकृष्ट करने लगी। यहाँ तक कि एक बार चुम्बन की बारी आई। वह अभिनय तो था ही, परन्तु इतना स्पष्ट है कि उस प्रक्रिया में उसे अपनी भूखी, दुर्दशा-ग्रस्त, व्याकुल-पत्नी की याद आ रही थी। यह सब लीला उसकी पत्नी, जो न जाने कैसे रंगभूमि के पास पहुँच गई थी, देख रही थी। उसने पहचाना कि यह उसी का पति है जिसने उसे पत्र में एक बार नहीं, कई बार लिखा कि उसकी दशा भी अच्छी नहीं है। परन्तु देखती है उसका

पति किसी नई रमणी के साथ विलास-क्रीड़ा कर रहा है। और समाज-मर्यादा के विरुद्ध उस रमणी का चुम्बन भी कर रहा है। पत्नी यह देखकर क्रोधाभिभूत हो उठी। उसे यह ध्यान न रहा कि यह वास्तविक नहीं, नाटक है। वह चिल्लाई, रोई और अंत में वहीं स्टेज के पास मूर्छित हो गई। इसी में नाटक समाप्त हो जाता है।

एक तरह से इस नाटक में नाटक के रूपक और जीवन की वास्तविकता दोनों का मिश्रण है। वैसे तो नाटक का जीवन भी वास्तविक है उसके विकास में जीवन के सूत्रों की उलझी हुई ग्रंथियाँ हैं। वह अपने उतार चढ़ाव से उसी भाव-धारा की ओर बहता है जहाँ जाकर मनुष्य और समाज के ज्ञान-तन्तुओं में एक विशेष झंकार उठती है परन्तु मैंने प्रत्यक्ष और नाटकीय-कल्पना को एक केन्द्र पर लाकर मिलाने का यत्न किया है। दर्शक को केवल दर्शक नहीं रहने दिया है जो नाटक के सुख-दुख को लेकर उस पर विचार करता हुआ घर चला जाता है। मैंने उसे उसी का एक पात्र बनाने का यत्न किया है, उसे नाटक का ही एक अंग बना दिया है।

हमारे जीवन में कल्पना को बहुत ऊँचा स्थान मिला है और साहित्य तो अधिकतर कल्पना प्रस्तुत होता ही है, परन्तु मैं देखता हूँ कल्पना वास्तविकता से ओत-प्रोत होती जा रही है आज। सत्य दोनों जगह है। यदि नाटक में हमारे मनुष्य और हमारे समाज की अनुभूति जाग्रत हो रही है और नाटक के पात्र अपनी चिन्ता-धारा के द्वारा मनुष्य की स्थिति के स्टेशन पार करते जा रहे हैं तो क्या 'रेलिङ्ग' के पास खड़े एक दर्शक का उस नाटक की रेल-गाड़ी से कोई सम्बन्ध नहीं है? वह एक दर्शक ही क्यों रहे, क्यों न वह दौड़कर उस धीमी रफ्तार से स्पीड तेज करने वाली गाड़ी में बैठकर अपने को एक बार नाटक का नायक, पात्र समझ ले; गाड़ी का आनंद उठा सकने की क्षमता का अधिकार माने? और क्यों न वह नाटक के 'क्लाइमेक्स' के समय उसी तीव्र अनुभूति में व्यावहारिक रूप से अपने को गूँथ डाले जिसकी कि उसके हृदय में दूसरों के लिये केवल सहानुभूति ही जाग्रत हो रही थी?

नाटक के इस प्रकार का संयोजन स्वप्न और जागृति का मिलन है, कल्पना और वास्तविकता का संयोग है। नाटक का यह रूप मुझे नहीं मालूम, मेरे इस

नाटक में भी क्यों आकर जुड़ गया है, परन्तु मैं देखता हूँ यह रूप असत्य नहीं है। उसमें जीवन है और दर्शकों के हृदय का सामंजस्य भी; दर्शक इसमें कहाँ तक दर्शक रह सकेगा, और नाटक—कहाँ तक नाटक—यह मैं दूसरों पर छोड़ता हूँ।

आज का नाटक हमारे जीवन की गति-विधि से बहुत मिल जुल गया है। नाटक ही क्या संपूर्ण साहित्य ही पुराने जीर्ण शीर्ण कलेवर को छोड़कर नवीनतम धारणाओं, भावनाओं में अग्रसर हो रहा है। पुराने मकान भी अच्छे हो सकते हैं, उनमें सुविधाएँ भी हो सकती हैं, परन्तु क्या आज के लिये उनका वह ढाँचा अभिवांछनीय है?

इस प्रश्न का उत्तर मैं दूसरी तरह से देना चाहूँगा:—खाना, पीना, कपड़ा मनुष्य के जीवन के लिये आज की तरह पहले भी आवश्यक वस्तुएँ थीं। हो सकता है मनुष्य पहले इतना कपड़ा न पहनता हो, परन्तु जब से कपड़े का आविष्कार हुआ है, उस समय से लेकर आज तक वह जीवन का एक अंग ही होता जा रहा है, इसमें किसी को क्या आपत्ति होगी? हाँ, तो कौन कह सकता है उन सभी चीजों की आवश्यकता आज भी वैसी नहीं है? परन्तु हम देखते हैं 'डिजाइन' पहनावे में जमीन आसमान का अन्तर आ गया है। खाने, पीने में भी एक विशेष दृष्टि-कोण समाज का होता जा रहा है। कहना चाहिये कि अन्तर हमारे दृष्टि-कोण का है जो दिन-रात के बदलाव के साथ साथ परिवर्तित हो रहा है। उसकी मूलाधार सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक परिस्थितियाँ हैं। इन परिस्थितियों की रगड़ से हमारे विचारों का रूप भी बदल रहा है। जो हम कल सोचते थे आज हमने उसमें परिवर्तन कर लिया है।

"सेठ रामगोपाल बहुत पुराने धनी थे। उनका घराना नगर में ही नहीं जिले में भी प्रसिद्ध था। ब्राह्मण, याचक, विद्वान्, अतिथि, राजनैतिक नेता उनके घर आकर ठहरा करते थे। सब का यथोचित सत्कार होता, सब आशा लेकर आते और उत्साह लेकर लौटते। प्रसन्नता हाथ बाँधे खड़ी रहती। भाग्य को तो उनकी भृकुटी का दास ही कहना चाहिये, पर अचानक राज्य-विद्रोह में उनको पकड़ लिया गया। बड़ा भीषण अभियोग बन गया। पहुँचा दिये गये जेलखाने। चौदह वर्ष

का कठिन कारावास हुआ। घरबार बिगड़ गया। जो मृत्य बन कर आये थे वे डाकू बन कर लौटे। सब समाप्त हो गया। सारे स्वप्न भंग हो गये। दस साल बाद लौट कर देखा तो भंख लोट रहा था। अंत में पेट भरने के लिये परदेश जाकर एक मिल में क्लर्क हो गये। बड़ी ईमानदारी से काम करते। इतने पर भी समय के भीतर काम पूरा न कर सकने के कारण मैनेजर उन्हें आलसी कहकर पुकारता, कभी कभी गाली भी देता। एक बार कुछ रुपयों के ग़बन का भी अभियोग सेठ रामगोपाल पर लगाया गया। बात यह हुई कि उसने अपने एक दरिद्र साथी की बात पर विश्वास कर के मरणासन्न पत्नी की परिचर्या के लिये कुछ रुपया मिल से दे दिया। दूसरे दिन पत्नी का देहान्त हो जाने के कारण रुपया जहाँ का तहाँ न रखा जा सका। दैवयोग से रुपया उसी दिन चैक किया गया, कम निकला। मिल का मालिक भी दौरा करते उधर आ निकला। मैनेजर ने सब मामला स्वामी की सेवा में रखा। स्वामी सेठ को देखते ही काँप उठा। उसने उसे तत्क्षण छोड़ देने की आज्ञा दी। इसके साथ ही मैनेजर को आज्ञा दी गई कि वह उसे किसी ऊँचे पद पर नियुक्त करे तथा उससे कोई काम न ले। परन्तु लौटकर देखा गया कि सेठ रामगोपाल मिल से बाहर नंगे पैरों दौड़ जा रहे हैं। यह मिल मालिक उन्हीं के यहाँ कभी काम करता था एक साधारण नौकर के रूप में।"

इस प्रकार के परिवर्तन में जीवन बदल जाता है, दृष्टि-कोण भी। उथल-पुथल का यह रूप हम आज प्रायः देखते हैं। समाज की इस विषमता का कारण आर्थिक और राजनैतिक दोनों ही है। कर्मवाद ने मनुष्य की आधार-भूत चेतना को जैसे हिला दिया है। जीवन के विषम वर्गीकरण का उपाय आज सोचा जा रहा है कहीं साम्यवाद के नाम से, कहीं कम्यूनिजम के सिद्धान्तों के आधार पर, कहीं गत्यात्मक भौतिकवाद (डायलेक्टिकल रियलिजम) के नाम पर। जिस घर को, जिस परिवार को, जिस देश को और जिस राजा की राजनीति को हम कभी एक सी दृष्टि से देखते हुए जीवन यापन कर देते थे वहीं अब दृष्टिभेद के साथ रूप भेद भी हो गया है। काल की अबाध गति ने हमें सम्पूर्ण देशों के साथ, और वहाँ की राजनैतिक उथल-पुथल के साथ सम्बद्ध कर दिया है। अमेरिका का एक धनी अपनी

पूँजी से दूसरे देश का आर्थिक-शोषण करता है यह हम भले ही प्रत्यक्ष न देख सकें, परन्तु अवान्तर रूप से हम से छिपा न रह सकेगा। सारांश यह है इसी प्रकार के तत्त्वों ने हमारा दृष्टि-कोण बदल दिया है। साहित्य का प्रगतिवाद और कुछ नहीं हमारी दैनिक समस्या का प्रतिबिम्ब है, उसके छुटकारे का एक प्रयत्न भी। संभव है हमारा यह प्रयत्न जीवन को उस दिशा की ओर न ले जा सके जहाँ जाकर हमारी निष्कृति संभव हो, पर इतना तो कहना ही होगा कि चोर के चोरी कर के भाग जाने पर मालिक-मकान को अपनी बेबसी की सफाई में लकड़ी न मिल सकने का पद्मपुराण तो पढ़ना ही पड़ेगा या बीमार के दवा से अच्छे न होने पर डाक्टर की तरफ शिकायत के लिये मुड़ना स्वाभाविक तो कहा ही जायगा, यही प्रगतिवाद है।

यथार्थ रूप से हमारे साहित्य ने जो कुछ देखा है प्रगति उसका कार्य है। इस नाटक में भी जीवन की एक शुद्धानुभूति है कल्पना से, उतनी ही कल्पना से, रंजित जितने से कपड़े पहने हुए किसी मनुष्य को राधेरमण के नाम से पहचानना। प्रस्तुत नाटक के सम्बन्ध में मुझे इतना ही कहना है कि इसमें लम्बी चौड़ी घटना नहीं है। कथानक सीधा सादा अपनी दौड़ लेकर चलता है। 'क्लाइमेक्स' भी कदाचित वैसा नहीं हो सका जैसा मैं चाहता था। परन्तु देखता हूँ मेरा यह प्रयत्न नाटक-साहित्य की वास्तविकता को ओर संकेत अवश्य है। इसमें पुरानी ईंटों को भी नये मकान बनाते समय काम में लाया गया है।

५ कृष्णा गली, लाहौर।
१३ जून, १९४१

उदयशंकर भट्ट

पात्र-सूची

नाटक के मुख्य पात्र

मदनलाल	एक सेठ
शोभा	सेठ की स्त्री
देवेंद्र	नाटककार
रूपकुमार	सेठ का लड़का
जमुना	शिक्षिता कुमारी

नाटक के उपपात्र

कन्हैयालाल	एक सेठ, अनाथालय का प्रधान
हुकुमचंद	अनाथालय का मंत्री
शशिकुमार	कन्हैयालाल का लड़का

अंतहीन-अंत

प्रारंभ

(सेठ मदनलाल की कोठी का एक कमरा—कार्पेट के ऊपर दरी और कालीन बिछे हुए हैं। बीच में सोफ़ासेट, फूलदान और रेशमी मेजपोश से सजी छोटी मेज रखी है। मनुष्य के आकार के शीशे। कुछ तस्वीरें बड़ी छोटी सब तरह की। समय प्रातःकाल ६ बजे। सेठ की स्त्री शोभा एक काउच पर लेटी हुई सी बैठी है। हाथ में फूलों का एक गुच्छा है जिसे कभी-कभी सूँघ लेती है। बदन दुबला, शरीर अस्वस्थ, चिंतातुर आकृति। धार्मिक प्रकृति की भीरू स्त्री। बीच बीच में चौंक उठती है और इधर उधर देखने लगती है।)

शोभा—(अपने आप) आँखों पर पट्टी बाँध लेने पर भी हृदय के डर को नहीं छुड़ाया जा सकता। मोहन, मोहन ! (नौकर आता है) देखो, देवेंद्र नहीं आये !

मोहन—नहीं बहूजी, अभी तो नहीं आये ! आते तो भला मालूम तो होते ही। क्या बाबू जी के कमरे में देखूँ !

शोभा—नहीं रहने दो। देखो, जब वे आवें तब सीधे उन्हें मेरे पास ले आना। (ठहर कर) तुम्हें यहाँ कितने दिन हो गये काम करते ?

मोहन—कोई चार साल।

शोभा—चार साल, हाँ, चार साल तो हो गये होंगे। क्या पहले भी मैं ऐसी ही थी ?

मोहन—कैसी बहूजी ?

शोभा—(किसी ध्यान में) हाँ, क्या कहा था मैंने, इस बार आम की मौसम कैसी है ?

मोहन—अच्छी तो है। आशा है खूब आम होंगे।

शोभा—और देखो, यह (सामने सेठ के भाई की तस्वीर की ओर संकेत करती हुई) तस्वीर यहाँ से हटा दो। मुझे इस तस्वीर को देखते ही न जाने कैसा लगने लगता है। फूल इतने लाकर क्यों रख दिये हैं? (नौकर तस्वीर हटाने को आगे बढ़ता है) ठहरो, रहने दो तस्वीर, फूलों का एक गुच्छा हटा दो। आज धूप बत्ती नहीं जलाई?

मोहन—(गुच्छा हटाता हुआ) धूप तो, हाँ धूप जलाता हूँ।

शोभा—धूप के लिये तुम से किसने कहा?

मोहन—(ठहर कर) आपने!

शोभा—(घबरा कर) मैंने, पागल? (लुढ़कती हुई) न जाने कैसी हो गई हूँ। चलो जाओ। (जाता है) अरे मोहन, (फिर आ जाता है) तुम चले क्यों गये रे!

मोहन—आपने ही तो कहा था?

शोभा—(ध्यान से सोचती हुई) मैंने! नहीं मैंने तो नहीं कहा। अच्छा मैंने ही कहा सही, तुम्हें जाना तो नहीं चाहिये।

मोहन—आज आपको क्या हो गया है बहूजी!

शोभा—(घबरा कर उठती हुई) क्या सचमुच मुझे कुछ हो गया है, पर मुझे तो देख नहीं पड़ता, मैं घबरा रही हूँ क्या? अच्छा देखो मेरे मना करने पर भी यह तस्वीर मेरे कमरे में न रहने पावे। उतारो इसे, अभी उतार दो अरे, उतारा कि नहीं?

(नौकर तस्वीर उतारता है, देवेंद्र का प्रवेश)

देवेंद्र—कहिये कैसा स्वास्थ्य है?

शोभा—मर रही हूँ। आपने लिखा?

देवेंद्र—हाँ, तैयार है रिहर्सल भी हो रही है। अब एकाध दिन की देर है।

शोभा—तो जल्दी करो। मैं सब प्रयत्न कर चुकी। प्रार्थना, अनुरोध, याचना, सब व्यर्थ गये। तुम्हारा क्या विश्वास है कुछ असर पड़ेगा ?

देवेंद्र—विश्वास तो है। मैं तो नाटककार हूँ। मैं समझता हूँ नाटक में सब से बड़ी शक्ति है। कविता, उपन्यास, कहानी से जो नहीं हो सकता वह नाटक से हो सकता है।

शोभा—(घबराती हुई) मुझे कुछ भी नहीं मालूम। मैं कुछ जानना भी नहीं चाहती। अरे मोहन, क्या तुम लोग मुझे चाय नहीं पिलाओगे ?

मोहन—(आश्चर्य से) चाय, चाय तो आपने अभी पी है!

शोभा—कहाँ, कहीं भी तो नहीं!

मोहन—एक घंटा भी नहीं हुआ, अभी बाबूजी के साथ!

शोभा—(इधर उधर देखती हुई) अच्छा, मैंने चाय पी ली! हाँ कुछ कुछ मालूम तो होता है। अच्छा जाओ, देखो अंदर कोई न आने पावे।

मोहन—बहुत अच्छा, क्या आपकी तबीअत खराब है कुछ ?

शोभा—(सँभल कर) मेरी, मेरी तबीअत क्यों खराब होती? पागल, हाँ देखो, ज़मुना अभी नहीं आई, अच्छा जाओ।

(मोहन जाता है)

देवेंद्र—मालूम होता है आपकी मानसिक अशांति बहुत है ?

शोभा—हाँ देवेंद्र बाबू, मेरा जीवन भार हो गया है। यदि यही अवस्था रही तो मुझे देख पड़ता है मैं मर जाऊँगी।

देवेंद्र—जल्दी ही हम खेल करने वाले हैं। बस, यही अन्तिम बाण है मुझे विश्वास है आपकी कामना पूर्ण होगी। (नाटक दिखाता हुआ) यह है। रूपकुमार का अभिनय सुंदर होगा।

शोभा—जमुना का भी, ठीक है। अच्छा, मैं जाती हूँ मेरी तबीअत

ठीक नहीं है। (चली जाती है)

(स्वेटर बुनते हुए जमुना का प्रवेश)

देवेंद्र—आओ जमुना, तुम्हारी ही प्रतीक्षा थी!

जमुना—क्यों क्या फिर तबीअत खराब हो गई?

देवेंद्र—हाँ, मालूम होता है उनके मन में गहरा डर बैठ गया है। वे कहती कुछ हैं सोचती कुछ हैं। तो तुमने अपना निश्चय बदल तो नहीं दिया न?

(रूपकुमार का प्रवेश)

जमुना—निश्चय क्या बदलूँगी, पर मेरा जी नहीं मानता। ऐसा लगता है मानों कोई कठिनाई मैंने मोल लेली।

रूप०—देखिये आपके न होने पर हमारा सब किया धरा नष्ट हो जायगा! अब परसों ही तो हम खेल करने जा रहे हैं, माता जी कहाँ गई?

जमुना—हूँ! (स्वेटर बुनती रहती है)

देवेंद्र—अभी, अभी भीतर चली गई हैं। उनकी इच्छा है नाटक जल्दी से जल्दी खेला जाय। हमारी रिहर्सल पूरी हो ही गई है।

जमुना—यदि मैं इसमें संमिलित न होऊँ तो मेरा पार्ट कोई भी कर सकता है देवेंद्र बाबू, मैं जितना ही सोचती हूँ उतना ही मुझे खेल में संमिलित होने में झिझक लगती है।

रूप०—देखिये जमुना देवी, हमें मँझधार में मत डुबोइये। माता जी की बड़ी इच्छा है आप नाटक में भाग लें उन्होंने इसी लिये तुम्हें बुलाया भी था पर कदाचित् उनकी तबीअत खराब हो गई इसलिये वे चली गईं।

जमुना—क्यों, क्या मेरे भाग न लेने से ही आपका खेल न होगा?

देवेंद्र—आखिर तुम्हें आपत्ति क्या है?

जमुना—आचार संबंधी। मैं देखती हूँ पात्रों का समाज में कोई

स्थान नहीं है। मेरे पिता जी भी तो इसे पसंद नहीं करते !

रूप०—रिहर्सल में तो उन्होंने रोका नहीं। अब कैसे रोक सकते हैं ? मेरी समझ में नहीं आता ! (रूपकुमार उत्तर सुनने को उत्सुक सा दिखाई पड़ता है)

देवेंद्र—तो फिर नाटक लिखना भी व्यर्थ है !

जमुना—कदाचित् खैर, माता जी ने कहा है तो मैं नाटक में भाग लूँगी, पर मेरी आपत्ति तो स्थिर है न !

देवेंद्र—कैसे ?

जमुना—चरित्र की दृष्टि से !

रूप०—इस नाटक में ऐसा कोई भाग भी तो नहीं है जिस पर तुम्हें आपत्ति हो।

देवेंद्र—इसीलिये कि इससे चरित्र के बिगड़ जाने की संभावना है, परंतु समाज के इस भाव को ठीक भी तो किया जा सकता है। यदि अच्छे और चरित्रवान पात्र नाटक खेलें तो कोई कारण नहीं कि नाटक के साथ उसके पात्रों का चारित्रिक महत्त्व न हो। संगीत भी तो एक कला है उसे भी तो लोग कभी गिरी हुई दृष्टि से देखते थे परंतु भारत के प्रसिद्ध गायकों ने आज उसका रूप ही बदल दिया। आज विष्णु-दिगंबर, भास्करराव, भारतखण्डे आदि गायकों के कारण उसका महत्त्व कितना अधिक हो गया है। कला वस्तु इतनी कोमल है, इतनी सूक्ष्म है, इतनी सत्य है कि अनधिकारी के हाथ में जाने पर उसका रूप बिगड़ जाता है। कला की शुद्धता, वास्तविकता, साधना तप के सहारे स्थिर रह सकती है।

जमुना—कला क्या है ?

देवेंद्र—मैं जीवन की सत्य और सुंदर अभिव्यक्ति को कला मानता

हूँ। कला में सत्य के साथ सौंदर्य का मिश्रण रहता है। शुष्क-सत्य दर्शन है, विज्ञान है, परंतु कला तो सत्य और सुंदर के बिना और कुछ हो ही नहीं सकती ?

जमुना—क्या सत्य के अतिरिक्त भी संसार में और कुछ हो सकता है ? मैं तो समझती हूँ सब कुछ सत्य ही है जो सत्य नहीं है वह न सुंदर है और न अच्छा ही।

देवेंद्र—तुमने यहाँ सत्य को बहुत विस्तृत अर्थ में लिया है। सत्य तो है ही। यह कहना तो ऐसे है जैसे ईश्वर ही सब कुछ है जो ईश्वर नहीं वह कुछ भी नहीं है। मैं मानता हूँ ईश्वर सब कुछ है परंतु व्यवहार में न तो ईश्वर ही सब कुछ है और न हम सब ही ईश्वर हैं। हाँ तो मेरे सत्य का आशय यह है कि जो लोग कला को केवल कल्पना कहते हैं, केवल सौंदर्य कहते हैं वे ठीक नहीं हैं। इसीलिये हम साहित्य को भी सत्य के आधार पर मानते हैं परंतु सुंदर तो वह होना ही चाहिये। सत्य यदि जीवन है तो सौंदर्य उसकी वृद्धि, उसका प्रकाश।

जमुना—और प्रेम ?

देवेंद्र—सृष्टि का सामंजस्य, जीवन की स्थिरता बनाये रखने के लिये प्रेम का अस्तित्व है। प्रेम वैसे कोई वस्तु नहीं है, वह तो जीवन के विकास के साथ विकसित होने वाली शक्ति है, गुण हैं जो जीवन के साथ साथ बढ़ते हैं। मनुष्य के ज्ञान-तंतुओं में बहने वाला एक शाश्वत रस है जो एक विशेष मात्रा तक बहता रहता है। दूसरे शब्दों में यह कहना होगा कि वह एक भावना है जो प्रत्येक प्राणी में थोड़ी बहुत मात्रा में रहती है। उसके अत्यंत उद्वेग का नाम पागलपन भी है। वह जीवन को बनाये रखने के लिये एक आवश्यक तत्त्व है। साहित्य

उसी का विकसित रूप है। सौंदर्य उसका सहचारी गुण है, जिससे हम शिव के द्वारा सत्य की ओर चलते हैं। नाटक में भी ये दो तत्त्व काम करते हैं।

जमुना—और वासना भी तो प्रेम ही है, उसे मनुष्य प्रेम से कैसे अलग कर सकता है?

देवेंद्र—वासना प्रेम की नीची श्रेणी का नाम है। न तो प्रेम का नाम वासना है और न परस्पर की बातचीत, हास-परिहास ही प्रेम है। प्रेम तो जीवन का वह शुद्ध तत्व है जिसमें वासना का कोई स्थान ही नहीं है। वैसे तो मैं मानता हूँ प्रेम के स्खलन का नाम वासना है। कला की रक्षा, कला का विकास उसी प्रेम से हो सकता है वासना से नहीं।

जमुना—तो इसका अर्थ यह हुआ कि जो कुछ पाया जाता है वह सब साहित्य नहीं है।

देवेंद्र—हाँ, निःसंदेह। उसमें बहुत कुछ सामयिक, नीचे दर्जे का भी है। जो साहित्य के नाम से पुकारा तो जाता है पर वह साहित्य नहीं है।

जमुना—क्या कोई ऐसा युग था या आने की संभावना है जहाँ तुम्हारे बताये नियम के अनुसार प्रेम का वैसा रूप लोगों में देखने या पा सकने की संभावना हो?

देवेंद्र—मुझे यहाँ इतिहास की खोज नहीं करना है, परंतु इतना तो मैं कह सकता हूँ कि हमारे सामने बहुत सी ऐसी बाहरी बातें रहती हैं जिनके द्वारा हम अपने ध्येय पर पहुँचते पहुँचते नीचे खिसक पड़ते हैं। युग तो कदाचित् ऐसा न मिले पर ऐसे व्यक्तियों की कमी नहीं है जो साहित्य के अनुसार जीवन पागये हैं। जिन्होंने प्रेम का, कला का, सौंदर्य का, सत्य का वास्तविक रूप देखा है। उनके उदाहरणों से

सब विश्वसाहित्य भरा पड़ा है।

जमुना—जैसे राधा, उर्मिला, सत्यवती ?

देवेंद्र—हाँ, और भी बहुत।

जमुना—तो तुम पार्ट क्यों नहीं करते, करो फिर मुझे कोई आपत्ति न होगी।

देवेंद्र—रूपकुमार चाहते हैं सूर्यकुमार का पार्ट वह करें और मैं सूत्रधार रहूँ।

जमुना—रूपकुमार !

रूप०—यदि इसमें कोई बुराई न हो तो !

जमुना—(कुछ सोच कर) मैं चाहती हूँ यदि बहुत ही आवश्यकता हो तो नारी का शरीर-स्पर्श किया जाय। और आगे बढ़कर कोई वैसा दृश्य उपस्थित करने की योजना तो कदापि मुझे सह्य नहीं है।

देवेंद्र—बिलकुल ठीक। मैं मानता हूँ यदि पति-पत्नी परस्पर ऐसा कोई पार्ट करें जिसमें शरीर-स्पर्श की आवश्यकता ही जान पड़े तब भी शिष्ट ढंग से ही होना चाहिये। यद्यपि नाटक का अर्थ वास्तविक जीवन का प्रदर्शन है, जीवन की तरह अंतर तो वहाँ होना ही नहीं चाहिये। फिर भी मैं मानता हूँ उत्तेजक दृश्य की कोई आवश्यकता नहीं है। हमारे यहाँ जो अच्छे घर की लड़कियाँ नाटकों में भाग लेने से घबराती हैं उसका एक कारण यही है कि नाटककार अपने दृश्यों में वैसी व्यवस्था नहीं करते ?

जमुना—तब तो पिता जी से आज्ञा लेने में मुझे कोई कठिनाई नहीं होगी।

देवेंद्र—(उसी धुन में) मैं रूढ़िवादी नहीं हूँ। मैं स्त्री-पुरुष को सदा वासनात्मक भावना से ही देखना नहीं चाहता। मैं चाहता

हूँ विशेष अवसर न आ जाने की अवस्था तक सदा पुरुष और स्त्री अपने को समान व्यवसायी, केवल प्राणी ही समझें।

जमुना—मैं तुम्हारी बात नहीं समझी !

देवेंद्र—मेरा आशय यही है कि स्त्री-पुरुष हर समय एक दूसरे के सामने होते ही अपने को स्त्री-पुरुष के रूप में न देखें।

जमुना—तुम्हारा मतलब यह है कि वे यह भूल जाँय कि वे स्त्री-पुरुष हैं और स्त्री-पुरुष के अपने रूप को भी भूल जाँय क्यों ! पर क्या यह संभव है ? नर या नारी जो कुछ हैं वे अपने रूप को कैसे भूल सकेंगे ? मैं तो जानती हूँ कला और साहित्य नर-नारी की वासनाओं का, उनके विलास का परिष्कृत रूप है। देश की एक जाति के ही साहित्य को देखिये। क्या उस में वासना को भड़काने वाले साहित्य के अतिरिक्त और कुछ भी है ? वे लोग स्त्री के मामले में परस्पर एक दूसरे पर विश्वास नहीं करते, स्त्री को उन्होंने छिपा कर रखने की वस्तु समझा है। जब तक ऐसी जाति है और उसमें इन विचारों की प्रबलता है तब तक दूसरी जाति के लोगों की नारी जीवन-व्यापार में कैसे निष्कंटक रह सकती है, और किसी कारण से उसके गिर जाने पर तुम्हारा समाज भी तो उसे निकाल कर बाहर फेंक देने के सिवा और कुछ नहीं कर सकता !

देवेंद्र—(आश्चर्य से) तुमने बहुत गहरे पर चोट की है जमुना ! जो सत्य है उससे मुँह नहीं मोड़ा जा सकता। मैं मानता हूँ यह हमारे समाज का दोष है, किंतु उसने जो यह सब नियम बनाये हैं उसे क्या तुम केवल मूर्खता ही कहोगी !

जमुना—सर्वथा !

देवेंद्र—नहीं ऐसा नहीं है, वंश की रक्षा, जाति की शुद्धि के लिये यह करना अनिवार्य है।

जमुना—जाति-शुद्धि क्या ?

देवेंद्र—जिससे जाति का रक्त शुद्ध रह सके।

जमुना—इससे क्या होगा ?

देवेंद्र—यह साहित्य का विषय नहीं है।

जमुना—तो क्या मैं समझ भी नहीं सकती ?

देवेंद्र—प्रत्येक जाति में एक विशेष गुण होता है। हमारी आर्य-जाति में भी बहुत से गुण हैं। जैसे चरित्र की दृढ़ता, न्याय के लिये प्राण तक न्यौछावर कर देना, वीरता, इसके साथ ही आकार की एकता भी! इन सब को रक्षा के लिये स्त्री की शुद्धता अपेक्षित है।

जमुना—तो क्या तुम समझते हो ये गुण अब तुम में रह गये हैं, इनमें से कौन सा गुण है जो तुम में है ? उदाहरण देने की आवश्यकता नहीं है परंतु मैं जानती हूँ कि भारत का नर-नारी समाज इनमें से कोई गुण अपने में नहीं रखता। वैयक्तिक रूप से किसी में ये गुण हो सकते हैं पर जाति के रूप में तो कोई भी गुण आज हम में दिखाई नहीं देता। (क्रोध से) आज का हिन्दू-समाज दासता-प्रिय, स्वार्थी, देश-द्रोही और अपना पेट भरने वाला है।

देवेंद्र—कैसे !

रूप०—(ऊबता हुआ) हम विषय से बाहर होते जा रहे हैं! केवल नाटक के संबंध में बातचीत होनी चाहिये। (घड़ी देखकर) हमें जाना भी तो है ?

जमुना—(उसी वेग में) उसमें धर्म की ...[illegible]ना है पर आडंबर के रूप में। देशप्रेम है पेट भरने का एक साधन, नेता बनने का

रोग, समाज-सुधार का विश्वास लेकर वह चलता है केवल, केवलमात्र अपनी प्रतिष्ठा के लिये, अपने गौरव के लिये। त्याग उसका दिखावा है, मंदिर समाज की तपेदिक के घर। वह आपस में लड़कर देश का नाश कर सकता है परंतु अपने विचारों को, जो उसने रूढ़ि के आधार पर बनावटी ईश्वर की प्रेरणा से, अपनी अहंमन्यता द्वारा पाये हैं, देशहित के सामने झुकाना नहीं सीखा। वह अपनी विधवा कन्या को वेश्या बनता देख सकता है परंतु प्रकृति के अनुकूल उसका उद्धार नहीं कर सकता? तुम क्या नहीं जानते कि भारत में किसी समय एक ही जाति थी आज उसमें क्यों अनेक जातियाँ दिखाई देती हैं। यदि तुम्हारे समाज में सच्चाई होती, एकता होती, दृढ़ता होती, प्रेम होता, विश्वास होता, बल होता तो क्यों तुम्हारे ही करोड़ों भाई दूसरी जाति में जाते? क्यों तुम उन्हें अपना बना कर न रख सके?

देवेंद्र—जमुना तुम्हारा, यह रूप शोभन है, मार्मिक भी! मैं चाहता हूँ हम में इसके विरुद्ध विद्रोह की भावना होती!

रूप०—जमुना देवी इस समय ऐसे देख पड़ती हैं मानों नाटक में किसी देवी का पार्ट कर रही हों।

जमुना—तुमने स्त्रियों को दबा रखा है चाहते हो जैसा चलाते हो, उनके प्राणों की भी तुम ने स्वार्थ के वश होकर हत्या कर दी है। पुरुष चाहे जितना पाप करे समाज उसे कुछ भी न कहे परंतु पैर फिसलते ही इस स्त्री का सर्वस्व नष्ट हो गया, ऐसी तुम डौंडी पीटते हो, क्या यही तुम्हारा न्याय है, धर्म है?

रूप०—(देवेंद्र से) सचमुच तुमने आज मेरी आँखें खोल दीं। मैं चलूँ फिर!

देवेंद्र—इसमें क्या संदेह है। हाँ तो क्या निश्चय रहा जमुना?

जमुना—मैं पार्ट करूँगी।

रूप०—(प्रसन्न होकर) तुमने हमारी लज्जा रख ली जमुना !

देवेंद्र—देखो जमुना, हम लोगों का उद्देश्य मनुष्य की आत्मा को नाटक के द्वारा उठाना है, उसके हृदय को झकझोर देना है। हम किसी तरह भी नीची सतह पर उतर कर मनुष्यता को गिराना नहीं चाहते। जिस दिन मेरे साहित्य से ऐसा होने की मुझे गंध भी आवेगी, उसी दिन मैं लिखना छोड़ दूँगा।

जमुना—(मुस्करा कर) देवेंद्रसुंदर क्या मैं तुम्हें जानती नहीं हूँ।

रूप०—मुझे तो ऐसा देख पड़ता है आजकल जो नगर में चोरियाँ डाके पड़ रहे हैं कुछ अंशों में ठीक वैसा ही हमारे नाटक का पात्र सूर्यकुमार है।

जमुना—ठीक है, (सोच कर) न जाने कौन भयंकर पुरुष है जिसने हत्या, मारकाट, चोरी लूट का बाजार गरम कर रखा है। अभी कल ही हमारे पड़ोसी के छै हज़ार रुपये बैंक से लौटते किसीने छीन लिये। पुलिस को कुछ भी पता नहीं लगा। अभी उस दिन सुना कि किसी ने गरीबों के घर जा जाकर रुपये बाँटे हैं। लोग हैरान हैं वह कौन आदमी है ? शायद वही दल होगा जो अमीरों को लूटता है और गरीबों की सहायता करता है।

देवेंद्र—मैं तो मानता हूँ ये सब हमारे समाज की मनोवृत्ति के रूप हैं। जब लोग भूखों मरेंगे, उन पर धनी लोग अत्याचार करेंगे और अपने वैभव का जाल फैला कर उन्हें दिखायेंगे तो स्वाभाविक रूप से समाज का वह भाग वैसा बनने के लिये विद्रोह करने को उतारू होगा जिसे वे सब सुविधाएँ प्राप्त नहीं हैं।

रूप०—तो क्या तुम समझते हो धनी गरीबों पर अत्याचार करते हैं ! वे उनका भला भी तो करते हैं ?

देवेंद्र—जो भी हो चाहे ऐसे आदमियों का कोई गिरोह हो या वह अकेला हो, है वह समाज की बेचैनी का प्रतिबिंब। तो कल से तैयारी होनी चाहिये !

रूप०—हाँ, दिन भी थोड़े रह गये हैं।

जमुना—(उठती हुई) मैं चाहती हूँ एक बार उस डाकू को देखती, आखिर वह चाहता क्या है !

रूप०—देख पाने पर क्या वह जिंदा भी रह सकेगा। पिता जी ने भी सरकार को मदद देने का बचन दिया है। सब शहर के लोग तैयार हैं।

देवेंद्र—मैं इसको दूसरे रूप में देखता हूँ। अच्छा चलूँ। (उठता है) नमस्कार, परसों नाटक होगा क्यों न !

जमुना—हाँ।

(चले जाते हैं)

पहला अंक

पहला दृश्य

नाटक प्रारंभ से पूर्व रंगभूमि के बाहर सूत्रधार आकर कहने लगता है:—

सूत्रधार—दर्शको, इस नाटक के प्रारंभ में एक और नाटक की योजना हो गई है वह इस प्रकार है कि इस नाटक के मूलपात्र दर्शक के रूप में भी आगये हैं। इस लिये यह समझ लेना चाहिये कि नाटक की रंगशाला में दो आदमी ऐसे बैठे हैं जो नाटक के स्वयं पात्र हैं और वे नाटक देख रहे हैं जहाँ उनके नाटक का अंत होगा वहाँ वास्तविक दर्शक समझ जायँगे कि ये पात्र कौन हैं और उनका नाटक से क्या संबंध है।

(नटी आती है)

सूत्र०—ओहो, तुम आगई !

नटी—आ क्या गई। तुम्हारे मारे तो नाक में दम हो रहा है।

सूत्र०—क्यों क्या हुआ ?

नटी—समझ में ही नहीं आरहा है आप यह कर क्या रहे हैं ?

सूत्र०—इसमें समझ में न आनेवाली तो कोई बात नहीं है। सुनो एक कथा कहता हूँ एक बार......।

नटी—ठहरो !

सूत्र०—क्यों ?

नटी—कहानी कह रहे हो क्या नाटक न होगा ?

सूत्र०—होगा क्यों नहीं परन्तु उसे समझने के लिये एक कहानी सुननी होगी !

नटी—यह विचित्र बात है—कहिये !

सूत्र०—किसी बड़े शहर में एक बड़ा आदमी बीमार हो गया। उसकी पत्नी तो पहले ही मर चुकी थी। उसके एक लड़का था छोटा-सा कोई तीन साल का !

नटी—अच्छा ! (मटक कर) सचमुच बच्चे मुझे बहुत प्यारे लगते हैं। क्या......।

सूत्र०—उस शहर में और आस-पास कोई उसका संबंधी नहीं था। बीमारी में उसकी देख-भाल करनेवाले सिवा उसके नौकरों के और कोई न था।

नटी—प्रियतम, मुझे तो बच्चे का बड़ा ख्याल आरहा है।

सूत्र०—अच्छा सुनो ! दवा-दारू करने पर भी बीमारी इतनी बढ़ गई कि डाक्टरों ने उसकी आशा छोड़दी। एकबार होश में आने पर कहीं दूर देश में रहनेवाले अपने भाई का उसने नाम लिया। नौकरों में से मुनीम को मालूम था कि उसके

मालिक का कोई भाई भी है जो दूर रहता है। मुनीम ने उसका नाम, पता पूछा और सब मालूम करके उसके भाई को तार दे दिया। परिणामस्वरूप उसका भाई वहाँ आ पहुँचा!

नटी—ऐसी अवस्था में उसके भाई का आजाना बहुत अच्छा ही हुआ। अच्छा फिर!

सूत्र०—भाई ने आकर बड़ी देख-भाल की। अंत में एक दिन उस धनी का देहांत हो गया, परंतु मरने के दिन सबेरे उसने भाई को बुलाकर लड़के को उसके हाथ में सौंपते हुए कहा—'देखो भाई, मैं जानता हूँ मैंने तुम्हारी कभी सहायता नहीं की। हम दोनों पिछले बीस वर्ष से एक दूसरे के शत्रु बने रहे हैं। पिता ने जो कुछ संपत्ति दी थी उसमें तुमने मुझे कुछ भी न देकर निकाल दिया था। आज जो कुछ तुम देख रहे हो वह मैंने अपने परिश्रम से कमाया है। स्त्री का देहांत हो ही चुका है, अब मेरी गृहस्थी में एकमात्र मेरे प्राणों का सहारा यह बालक है।'

नटी—(आह भरकर) ओः।

सूत्र०—वह फिर ठहर कर कहने लगा—'वैसे मैं तुम से कह तो कुछ नहीं सकता यदि तुम्हें वंश का तनिक भी मोह हो, मेरा कुछ भी ध्यान हो तो मेरी इस संतान का ध्यान रखना। बीमार होने से पूर्व मुझ से कई मित्रों ने कहा कि मैं यह रुपया इसके (बालक के) नाम करा दूँ पर मुझे ऐसा ठीक नहीं मालूम हुआ। मैं यह सब संपत्ति और बालक तुम्हें सौंपता हूँ। जैसा तुम ठीक समझो करो!' इतना कह कर वह चुप हो गया। कहने की आवश्यकता नहीं कि उसके भाई ने बालक पर बहुत ममता प्रकट की तथा ऐसा भाव दिखाया कि जैसे उस बालक का सब से अधिक मोह उसे ही हो।

मरणासन्न व्यक्ति ने यह देख कर सुख की साँस ली और उसी दिन साँझ को इस संसार से कूच कर गया। भाई ने विधि-वत् क्रिया कर्म किया और वहीं रहने लगा। एक दिन लोगों ने सुना कि उस बालक को डाकू उड़ाकर ले गये और उसे मार डाला।

नटी—बहुत बुरा हुआ! हे भगवान्! हाय, न जाने कैसा सुंदर बालक होगा!

सूत्र०—अच्छा, अब नाटक प्रारंभ होता है, चलो!

(उदास नटी का हाथ पकड़ कर सूत्रधार निकल जाता है।)

—:o:—

दूसरा दृश्य

(पर्दा उठता है)

[अनाथालय का कमरा २० × २५ लंबा चौड़ा। एक तरफ़ लंबा जेल का बना हुआ कार्पेट बिछा है। पूर्व की ओर कोने में एक दरी, जिस पर स्याही के दाग़ हैं। पास ही एक डेस्क है, जिस से सटा हुआ एक आदमी कुछ लिख रहा है। कमरे की दीवारों पर दो तीन पुराने कैलेण्डर टँगे हैं। एक में महात्मा गाँधी का चित्र है, दूसरा कृष्ण का और तीसरे में 'वर्ड एण्ड' कंपनी के बनाये हुए मकानों के चित्र हैं। दीवारों का चूना उतर गया है। कहीं कहीं थपड़े उचल कर मानों ताकझाँक कर रहे हैं। बैठा हुआ मनुष्य रसीदों की जाँच-पड़ताल कर रहा है। नाक की नोक पर रखा हुआ चश्मा, सिर नंगा, देह में गजी की मोटी कमीज़, नागपुरी लाल किनारे की धोती। भीतर के दरवाज़े से एक स्त्री आती है और डेस्क से सटकर लिखने वाले की तरफ देखती है। स्त्री जार्जट की सफेद साड़ी पहने है। रंग साँवला, रूप बहुत ही साधारण, बनाव ठनाव में चतुर। कद मँझोला। गठन साधारण। नाक में मोटी सोने की लौंग। माथे पर टिकुली।]

स्त्री—(एकाएक गरज कर) क्या इसी लिये मुझे लाये थे! याद रखो, मैं दिन भर यों बैठी नहीं रह सकती, और न हो तो पहरने

को कपड़े तो हों, गहना मरा तो क्या मिलेगा। सुना कि नहीं, क्या इसी लिये मुझे लाये थे ?

मैनेजर—देखो, मंत्रीजी आते होंगे। तुम भीतर चली जाओ। न जाने आज हिसाब क्यों नहीं मिल रहा। (रसीद के पन्ने उलट कर) तेरह आने चार पाई, (दूसरे पन्ने पर) छै रुपये बारह आने, (तीसरे पन्ने पर) सात रुपये चौदह आने।

स्त्री—(रसीद हाथ से छीन कर) भाड़ में जाँय तुम्हारे सात रुपये चौदह आने। आज मेरी नथ न आई तो देखना, (ऐसे देखती है जैसे खा जायगी।)

मैने०—(डरकर निहोरे के भाव से) ज़रा काम कर लेने दो। देखो हाथ जोड़ता हूँ। (थैली में से रुपये निकाल कर गिनने लगता है।) दस रुपये कम हैं। दस रुपये कम हैं ? (इधर उधर देखकर फिर गिनता है) दस रुपये कम हैं। तुमने तो...............!

स्त्री—(आगे बढ़कर) मैं क्या कोई चोर हूँ ! (हाथ मटकाकर) देखो, मुझे चोरी लगाई तो ठीक न होगा। कहे देती हूँ (ज़ोर से रोकर) हाय रे, मैं चोर हूँ। मुझे चोरी लगाते हैं। हाय राम रे...... मुझे चोर समझ......।

मैने०—(एकदम उठकर और पास जाकर धीरे से) तुम्हें चोर कौन कहता है। पूछने ही भर से क्या चोर हो गई ? जाओ घर में बैठो।

(बाहर से आवाज़ आती है—'पंडित जी, पंडित जी यह घी आया है')

मैने०—(स्त्री को भीतर के दरवाजे से धकेल कर) हाँ, ले आओ न भाई ?

(एक आदमी भीतर आता है)

आगंतुक—सेठ चुन्नीलाल के यहाँ से यह घी आया है क्या कहे हैं अनाथालय के लड़कों के लिये। और ये दो रुपये, और ये बीस लड्डू। कल उनके छोटे लड़के का तुलादान कराया गया है घी से और लड्डुओं से। कुछ तो मंगतों को दे दिया

बाकी यहाँ भिजवाया है, क्या कहे हैं समझे। मुझ से कहने लगे-'तू भी कुछ लड्डू ले ले। घी तो क्या लेगा?' भला, मैं क्या इतना गया बीता हूँ कि लड्डू ले लेता। आदमी और चाहे कुछ करले पर दान का पैसा तो...क्यों पंडित जी ठीक है न!

मैने०—हाँ ठीक है भाई! क्या रसीद लिखनी होगी?

आगं०—रसीद वसीद तो मैं जानता नहीं। तुम जानो तुम्हारा काम जाने। यह औरत कौन थी पंडित जी! तुम्हारी घर-वाली होगी। बड़े ज़ोर से लड़ रही थी। मुझे तो सेठानी का ख्याल आया। हमारी सेठानी भी तो इसी तरह...जाने दो क्या कहे हैं किसी की बात, किसी की बात किसी से क्यों कही जाय क्यों पंडित जी है न? (इतने में कुछ लड़के भीतर आजाते हैं 'लड्डू आये हैं' कह कर चिल्लाने लगते हैं।)

मैने०—(लड़कों की तरफ़ घूर कर) चलो, बाहर चलो। कहाँ घुसे आ रहे हो। गये कि नहीं? (एक लड़के को पास बुलाकर) ले ये सब भीतर दे आ। (सब सामान लड़के के हाथों और कुछ स्वयं लेकर भीतर चला जाता है)

सब—(धीरे से) हाँ, भीतर दे आ! अनाथों के नाम से आया माल भीतर दे आ।

पहला—पूरा पक्का है। महादेव को कल इतना मारा कि उसकी हड्डी हड्डी दर्द कर रही है।

दूसरा—बेईमान है!

तीसरा—चोर, मैनेजर बना फिरता है। इतना आता है और हमें कुछ भी नहीं।

चौथा—न कपड़े न खाना!

पहला—उस चुड़ैल के लिये सब कुछ।

दूसरा—डायन कहीं की।

तीसरा—कैसी डरावनी सूरत है।

चौथा—मानों खा जायगी।

आगंतुक—अरे, तो क्या तुम्हें कुछ भी नहीं मिलता?

सब—कुछ भी नहीं!

आगंतुक—कहाँ जाता है?

पहला—बेचा जाता है बेचा! कुछ वह मंत्री खाजाता है।

दूसरा—अरे चुप! मारेगा।

पहला—मुझे किसी का डर नहीं है। निकाल देगा चला जाऊँगा। यहाँ नहीं बाहर भीख माँग खाऊँगा। मजदूरी कर लूँगा। (आगंतुक से) कुछ भी नहीं दिया जाता। सब खा जाते हैं। व्यापार है व्यापार!

(मैनेजर आता है)

मैने०—(आगंतुक से) सेठजी को इन लड़कों की ओर से नमस्ते कहना और कहना कि अनाथालय उन्हीं का है। बच्चे भी उन्हीं के हैं। उन्होंने बड़ी कृपा की।

आगंतुक—पर पंडित जी, किसी की बात क्या कहे हैं कहनी नहीं चाहिये; यह दान तो सेठजी ने लड़कों को ही दिया है तुम भीतर क्यों रख आये? क्या तुम भी दान का खाते हो! तुम तो......

मैने०—सब इन्हीं बच्चों के लिये है। (लड़के से) जा दस लड्डू भीतर से ले आ और आधा आधा बाँट दे। हम भी तो सेठ जी के दास हैं। जाओ रे, लड्डू बाँट लो। सुनते हो, जाओ बाहर। निकम्मे कहीं के चोर हैं चोर (गरज कर) गये कि नहीं?

(सब डर से बाहर चले जाते हैं)

आगंतुक—देखो पंडित जी, दान का पैसा न लिया करो किसी की

बात क्या कहे हैं कहनी नहीं चाहिये। न जाने कौन से पाप से इनके माँ बाप मर गये और इन्हें अनाथ बनना पड़ा है क्या कहे हैं।

मैने०—हाँ सो तो है ही भाई! अच्छा जाओ सेठजी से हमारा प्रणाम कहना।

आगंतुक—राम राम! (आगंतुक चला जाता है। अनाथालय का मंत्री आता है। मैनेजर हाथ जोड़ कर नमस्ते करता है)

मंत्री—देखो, पंडित जी! लड़कों को डाट कर रक्खा करो। यह क्या आया था?

मैने०—कुछ नहीं थोड़ा-सा घी था। सेठ चुन्नीलाल ने भेजा था।

मंत्री—और?

मैने०—और, और क्या?

मंत्री—कुछ लड्डू भी थे!

मैने०—हाँ कुछ थे। वे तो लड़कों को बाँट दिये।

मंत्री—कुछ रुपये!

मैने०—रुपया कैसा! रुपया-उपया तो कुछ भी नहीं आया। सेठ धनपतमल ने कहलवा भेजा है कि चूने की बोरियाँ और ईंटें पहुँची कि नहीं?

मंत्री—(अनमना-सा होकर) हाँ वे ईंटे मैंने ठीक ठिकाने भिजवा दी हैं, चूना भी।

मैने०—अर्थात्!

मंत्री—(खीझ कर) अर्थात् क्या, आज का हिसाब कहाँ है? लाओ दिखाओ।

मैने०—आपके मकान में अब क्या कमी रह गई है मंत्री जी!

मंत्री—बनकर तो सब कुछ तैयार हो गया है केवल ईंटों का फर्श और ऊपर टीप रह गई है वह भी जल्दी ही सब हो जायगा।

मैने०—पर अनाथालय के मकान के लिये जो ईंट चूना आया है उसके संबंध में कभी सेठ ने पूछा तो ?

मंत्री—कह देना, उतने से कमरा तो बनने से रहा! जब तक और प्रबंध न हो जाय तब तक कैसे काम प्रारंभ किया जा सकता है। और मैं जो हूँ!

मैने०—पर वह तो कमरे के लिये पूरा सामान था।

मंत्री—तुम समझते तो कुछ हो नहीं। हाँ, आज का हिसाब तो लाओ। मैं क्या यहाँ घास खोदने आया हूँ। आखिर इतना समय और कोई क्यों नहीं देता! साफ़ है कुछ फ़ायदा तो होना चाहिये। और मैं भी कौन सब सामान सदा के लिये घर ले जाऊँगा। मेरी ईंटें आ जायँगी तो लौटा दूँगा। देखो, इस बार सालाना जलसे पर हमें सेठ धनपतमल को ही सभापति बनाना है। उन्होंने दो हजार रुपया और देने को कहा है। बाबू सुखराय के यहाँ से लड़कों को कपड़े मिलेंगे। वे एक एक धोती और एक एक कुरता तमाम लड़कों को देना चाहते हैं! इन लड़कों के पास पहले कोई कुरते हैं कि नहीं।

मैने०—हाँ, एक एक कुरता और धोती तो अभी है

मंत्री—तो अच्छा है वह सब कपड़ा दुकान पर भेज देना। मैं गोदाम में रखवा दूँगा।

मैने०—मुझे आज ही पच्चीस रुपये की जरूरत है ?

मंत्री—(जाता हुआ) तो किसी और खाते में डालकर रुपया ले लो। पर देखो, हिसाब में गड़बड़ न हो।

मैने०—(प्रसन्न होकर) पाई-पाई का हिसाब साफ़ है। भले ही सरकारी जाँच करनेवाला आकर क्यों न देखले।

मंत्री—(लौट कर) आटे की अभी कितनी बोरियाँ हैं ?

मैने०—दस बारह होंगी।

मंत्री—एक बोरी घर भिजवा देना। मैं जा रहा हूँ, याद करके भला?

मैने०—आप निश्चिंत रहिये। (मंत्री चला जाता है उछल कर) दुनियाँ ठगो मक्कर से और रोटी खाओ शक्कर से।

(स्त्री का प्रवेश)

स्त्री—बताओ मेरी नथ कब आवेगी! लड्डू मालूम तो अच्छे देते हैं। निरा घी ही भरा है।

मैने०—(हँसकर) वे दस रुपये और तो कहीं जा नहीं सकते। मालूम होता है......।

स्त्री—(हँसकर) हाँ, मैंने उड़ा लिये बस! जाओ कर लो जो कुछ करना हो।—यह मंत्री क्या कह रहा था!

(स्त्री घर में चली जाती है और सूर्यकुमार का चुपचाप दो लड़कों के साथ प्रवेश)

मैने०—(घबराहट दबा कर) अरे सूरज है, आगया, क्या लाया?

सुरेश—बारह आने मिले हैं।

सूर्य०—तुम दोनों जाओ मैं दे दूँगा! जाओ क्या देखते हो?

मैने०—हाँ, तुम जाओ। (दोनों जाते हैं, मैनेजर सूर्यकुमार की ओर देखता है)

सूर्य०—मैनेजर साहब! ये बारह आने मिले हैं!

मैने०—लाओ? (हाथ फैलाता है और रसीदें सँभालने लगता है।)

सूर्य०—मैनेजर साहब!

मैने०—हाँ क्या है?

सूर्य०—यह सब क्या हो रहा है? आज तुमने फिर रामधन को पीटा।

मैने०—(क्रोध से) हाँ तू कौन है?

सूर्य०—मैं बहुत दिनों से देख रहा हूँ। अब तक मैं जान कर भी अनजान बन रहा हूँ!

मैने०—(डपट कर) क्या कह रहा है। क्या जानता है बता!

सूर्य०—आखिर मैं भी दो रोटी खाता हूँ। मैं देख रहा हूँ तुम बेई-

गान हो। अनाथालय से रुपया उड़ाकर खा जाते हो। वह मंत्री पूरा बना हुआ है। उसने धनपतमल के यहाँ से आई ईंटें और चूना हड़प लिया। एक बोरी आटे की भी घर भिजवाने को कह गया है, क्यों है न ?

मैने०—(घबराया हुआ साहस भर कर) तू मूर्ख है। याद रखना कान पकड़ कर अनाथालय से निकाल दूँगा। इतना खिलाने, पिलाने, पालने, पोसने का यह फल है ? आज ही मंत्री से कह कर निकलवा दूँगा।

सूर्य०—(हँस कर) पच्चीस रुपये जो तुम्हें किसी खाते से निकाल कर लेने को कह गया है इसके अनुसार मुझे एक ही फल मिल सकता है कि कान खींच कर मैं निकाल दिया जाऊँ। तभी तो नथ बन सकेगी न !

मैने०—(घबरा कर) सूरज, तुम पागल तो नहीं हुए हो ? कैसी नथ, कैसे पच्चीस रुपये ? किसने कहा और किस भकुए ने लिए हैं ? देखो, तुम्हें जिस चीज़ की आवश्यकता हो मुझसे कहो पर ऐसी बातें न किया करो, समझे ?

सूर्य०—मैं सब जानता हूँ। सब समझता हूँ। तुम्हारी और उस बदमाश मंत्री की ! आज मैंने......... ।

मैने०—(उठ कर और पास जाकर उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुए) तुम पागल हो ! तुम्हारी बात कौन सुनेगा। मान लो, हम और मंत्री बेईमान हैं। पर मंत्री सेठ है उस पर कौन विश्वास करेगा कि वह खानेवाला है। और उसके साथ ही मुझे भी कोई बेईमान नहीं समझेगा। हाँ, तुम्हें आज हो क्या गया ? अब तुम बड़े हो गये हो। मैं तुम्हें अपना सहायक बनाना चाहता हूँ। समझे! मैंने बड़ी दुनिया देखी है। इसी अनाथालय में बीस साल बिताये हैं। बड़े बड़े रंग देखे हैं। भाई !

सूर्य०—(चुप रहता है)

मैने०—देखो सूरज, संसार का यही नियम है। हम मानते हैं हम धर्मात्मा नहीं हैं। पूरे बेईमान हैं। खाने की जगह खाते हैं। और न खायँ तो करें क्या, पेट कैसे भरे?

सूर्य०—(क्रोध से) इन छोटे-छोटे बच्चों के पेट काटकर खाने से तो चोरी कर लेना अच्छा, भीख माँगकर खाना अच्छा है। जिनके लिये कपड़ा आवे उन्हें कपड़ा न मिले, जिनके लिये खाना आवे उन्हें खाना न मिले। तुम क्या समझते हो इसका फल तुम्हें और उस बदमाश मंत्री को नहीं भुगतना पड़ेगा!

मैने०—तुम्हारा कहना ठीक है। हम बेईमान हैं। पर संसार में ईमानदार कौन है? ये बड़े बड़े मालदार आदमी क्या ऐसे ही बड़े हो गये हैं, इन्होंने भी हज़ारों का माल दबा लिया है, किसी ने ब्याज बढ़ा कर, किसी ने किसी का रुपया मार कर, किसी ने दिन-रात खून पसीना एक करके कमानेवाले कारीगरों को थोड़ी मज़दूरी देकर रुपया कमाया है। सब जगह यही हाल है?

सूर्य०—तो गया तुम कहते हो न्याय कहीं भी नहीं है।

मैने०—होगा, कहीं होगा। पर सब जगह नहीं है। जो लँगोट बाँधकर वन में तप करते हैं, जो एक समय भूखे रह कर सो जाते हैं, जो अपना और अपने बच्चों का पेट नहीं भर सकते उनमें न्याय हो सकता है, सब में नहीं।

सूर्य०—मुझसे अब यह नहीं देखा जाता। मैं तुम्हारी मरम्मत करा कर छोड़ूँगा। (क्रोध में) मैं तुम्हारी एक भी बात नहीं मानूँगा। मैं आज ही बाबू कन्हैयालाल से जाकर कहूँगा। उनसे तुम्हारी सब बेईमानी की बातें बताऊँगा। जाता हूँ। लड़कों के लिये आवे और तुम खाओ, वह बेईमान मंत्री खाय। जाता हूँ। तुमने

लड़कों के कपड़े बेचे, बर्तन बेचे, घी बेचा, आटा बेचा ये सब बातें आज मैं खोलकर प्रधान जी से कहूँगा। (जाने लगता है, फिर ठहर कर) लड़के माँगते हैं तो उन्हें मारते हो, खाने को नहीं देते। नीच हत्यारे कहीं के।

मैने०—(क्रोध से दाँत पीसकर) मालूम होता है तेरे बुरे दिन आये हैं। चोर कहीं का। तूने ही दस रुपये चुराये हैं। चोर! बता वे रुपये कहाँ हैं?

सूर्य०—ज़रा होश में आकर बातें करो।

(प्रधान के साथ मंत्री का प्रवेश)

मैने०—(प्रधान से) स्वयं चोरी करके मुझे चोर बताता है!

प्रधान—क्या है, क्या बात है?

मैने०—(आँखों में आँसू भर कर) सरकार, मुझ से अनाथालय का काम नहीं हो सकेगा। इनकी सेवा करूँ और बेईमान बनूँ। आज इसने दस रुपये चुरा लिये और ऊपर से मुझे डाटता है।

मंत्री—क्या बात है, क्यों रे सूरज? (सूर्य मंत्री को देख कर मुँह फेर लेता है)

प्रधान—आख़िर बात क्या है, कौन तुम्हें चोर कहता है?

सूर्य०—(तपाक से) प्रधान जी, मैं बिलकुल निरपराध हूँ न मैंने रुपये चुराये न कुछ। इस बेईमान मैनेजर ने मंत्री के साथ मिल कर रुपया खाया है। रोज़ यहाँ से ले जाकर घी बेचा जाता है, आटा बेचा जाता है, बर्तन बेचे जाते हैं, जो कुछ आता है ये दोनों मिल कर खा जाते हैं। सेठ धनपतमल के यहाँ से ईंटें मकान बनाने के लिये आई वे मंत्री के घर गईं। आटे की बोरियाँ भी कभी कभी मंत्री के घर चली जाती हैं।

मंत्री—(आवेश में आकर) मालूम होता है तेरा दिमाग़ फिर गया है।

मैने०—चोर है। आज इसने दस रुपये चुराये हैं अभी मैंने इसके पास से पकड़े हैं।

प्रधान—यह तो बहुत भयंकर बात है। पुलिस को बुला कर उसके हवाले कर दो। बुलाओ पुलिस को। ऐसे आदमी को क्षमा नहीं किया जा सकता!

(मैनेजर बाहर निकल आता है)

सूर्य०—यह सब सही नहीं है। न मैंने रुपये चुराये न कुछ, आज मैंने दोनों की बातें सुनकर भण्डाफोड़ कर दिया है इसलिये मैनेजर ने जाल फैलाया है। आपको विश्वास न हो तो और लड़कों से पूछ लीजिये।

मंत्री—तू झूठ बोलता है सूअर! (आगे बढ़ कर एक थप्पड़ उसके मारता है)

(लड़के जो चुपचाप खड़े रहते हैं उनमें से एक आगे बढ़ कर)

लड़का—प्रधान जी, सूरज का कोई दोष नहीं है।

प्रधान—सब लड़के बाहर चले जाओ। मैं अनाथालय में यह काम न होने दूँगा। और तू भी (कहने वाले लड़के की ओर) क्या जेल जाना चाहता है! बदमाश कहीं का?

(मैनेजर के साथ पुलिस के कुछ आदमियों का प्रवेश)

प्रधान—(थानेदार से) देखिये थानेदार साहब, इस लड़के ने दस रुपये की चोरी की है। यह बदमाश है अभी इसके पास चोरी के रुपये पाये गये हैं।

एक लड़का—(आगे बढ़कर) प्रधान जी, सूर्यकुमार निर्दोष है।

दूसरा लड़का—मैं धर्म की कसम खाकर कह सकता हूँ कि सूरज का कोई अपराध नहीं है।

मंत्री—(डपट कर) चुप रहो बदमाश कहीं के, भागो यहाँ से।

प्रधान—थानेदार साहब, आप इस लड़के को पकड़ कर ले जाइये।

थाने०—(सिपाहियों से) इस लड़के को गिरफ्तार करलो।

सूर्य०—मैंने कुछ नहीं किया थानेदार साहब, मैं निरपराध हूँ प्रधान जी! ये ही दोनों बेईमान हैं।

थाने०—(चलता हुआ) आपको इसके केस में गवाही देनी होगी।

प्रधान—अवश्य।

थाने०—(मैनेजर और मंत्री से) चलिये थाने में आपको भी बयान देने होंगे।

सब—चलिये!

(सब चले जाते हैं, लड़कों की आँखों में आँसू भर आते हैं।)

पर्दा गिरता है।

तीसरा दृश्य

(बाबू कन्हैयालाल का घर—एक कमरे में चारपाई पर उनकी स्त्री पड़ी है। कमरे से सटा हुआ बाईं ओर एक और कमरा है जिसका रास्ता कमरे से होकर जाता है। स्त्री की अवस्था लगभग ४५ वर्ष दुर्बल और बीमार। पास ही एक कुरसी पर वृद्ध कन्हैयालाल बैठे हैं। वयस लगभग ५० वर्ष। देखने में उतनी उम्र के नहीं मालूम पड़ते। पास ही छोटी मेज़ पर एक अखबार पड़ा है। स्त्री के सिरहाने एक बड़ी मेज़ है उस पर कुछ दवा की शीशियाँ रखी हुई हैं। एक अधेड़ उम्र की नौकरानी पास खड़ी है। दूसरी तरफ़ कुर्सी पर एक नर्स बैठी है।)

कन्हैया०—(नर्स से) अब कैसी दशा है?

नर्स—अब तो बुखार कुछ कम है! इसी तरह रहा तो एक सप्ताह में ठीक हो जायँगी। ज़रा ठीक समय पर दवा देने की आवश्यकता है।

कन्हैया०—(नौकरानी से) देखो मणी, इनकी दवा का ध्यान रखना। बड़ी कठिनाई से बुखार उतरा है।

मणी—जी बाबू जी!

नर्स—(नौकरानी से) क्या तुम हर घंटे के बाद टेंपरेचर ले सकोगी? ये शीशियाँ हैं दवा की। अगर सौ से नीचे टेंपरेचर हो तो

नंबर एक की, यह नंबर लगा है देखती हो न! यह दवा देना। और अगर सौ से ऊपर टैंपरेचर हो तो नंबर दो की शीशी से दवा पिलाना, समझी!

मणी—जी नर्स साहब! समझ गई।

कन्हैया०—नर्स साहिब, मैं देखकर दवा दिलवा दूँगा! यह बिचारी इन बातों को क्या जाने!

नर्स—नहीं नहीं। यह कोई मुश्किल बात नहीं है। आप क्यों कष्ट करेंगे। मैं शाम को आकर एक बार फिर देख जाऊँगी। दौरे का ख्याल रखियेगा। यह बड़ा भयंकर है।

पत्नी—(नर्स से) आप क्यों कष्ट करती हैं मैं दवा नहीं पीऊँगी। मुझे अब और नहीं जीना है। आप जाइये। (करवट बदल लेती है।)

कन्हैया०—यही तो तुम्हारा पागलपन है। भला दवा क्यों न पीओगी? अभी तुम्हारा बुखार उतरा जाता है। तुम फिर वैसी ही ठीक हो जाओगी। (नर्स से) आप जाइये। मैं इनकी दवा का ख्याल रखूँगा।

नर्स—इस समय बहुत 'केअर' की जरूरत है बाबू साहब! दौरे का...ख्याल...। बातें करते रहियेगा।

कन्हैया०—हाँ, सब ठीक होगा।

(नर्स चली जाती है)

मणी—(सिर पर हाथ फेरती हुई) नहीं बहूजी, देखो ऐसा न करो! भगवान् जल्दी अच्छा करेंगे।

कन्हैया०—(अखबार लेकर पढ़ता हुआ) वह अनाथालय के दान का समाचार आज के पत्र में प्रकाशित हुआ है। (पढ़ता हुआ) मंत्री ने लिखा है कि—"अभी उस दिन दानवीर बाबू कन्हैयालाल जी ने अनाथालय के लड़कों को भोजन कराते हुए उन्हें एक एक वस्त्र देकर हिंदूजाति के नौनिहालों की

जो रक्षा की है उसके लिये अनाथालय की कमेटी उनका हार्दिक धन्यवाद करती है।" सुना तुमने !

पत्नी—(सुनकर भी कोई उत्तर नहीं देती।)

मणी—बाबू जी की इतनी परसंसा सुनकर भी क्या तुम्हें कोई खुसी नहीं होती ! क्या करें बिचारी बीमारी क्या थोड़ी भोगी है ! और कोई होता तो टस से मस न हो सकता !

कन्हैया०—खैर जाने दो इन बातों को, दवा तो पीनी ही होगी। ऐसा किये बिना काम कैसे चल सकता है। देखो, अधिक हठ ठीक नहीं है। (पास जाकर) तुम जानती हो मैंने तुम्हारे लिये कितना कष्ट उठाया है ? तुम इतना घबरा क्यों जाती हो ?

पत्नी—मैं तुम्हारी कृतज्ञ हूँ। पर मुझे अधिक जीना नहीं है। बहुत देख लिया है।

कन्हैया०—अब तुम चुपचाप लेटी रहो। सोना नहीं भला ! जीना कैसे नहीं है। अभी देखा ही क्या है।

(टनटन की आवाज के साथ नौकर का प्रवेश)

नौकर—टेलीफोन आया है सरकार !

कन्हैया०—हाँ सो तो सुन रहा हूँ। अच्छा चल। (कन्हैयालाल जाता है और सीटी बजाता हुआ कन्हैयालाल का लड़का शशीकुमार आता है)

शशी०—(नौकरानी से) अब क्या हाल है मणी ! माँ, कैसा जी है

(पास जाकर माँ के सिर पर हाथ फेरता है)

मणी—बुखार तो कुछ उतरा है।

शशी०—(माँ को छोड़ गुनगुनाता और जूते चरमर करता हुआ कमरे में इधर उधर घूमने लगता है)

यह कैसा संसार सखी री, यह कैसा संसार
प्रेम बिना सब सूना जग है।

अरे तो क्या नर्स आई थी ! क्या कहा उसने !

मणी—देखकर दवा दे गई है।

शशी०—अच्छा (गाता हुआ)

प्रेम बिना सूनी जगमग है
प्रेम जगत का सार सखी री।

माँ, तुम घबराती क्यों हो। सब ठीक होगा। माँ तुम ने सुना! बाबू जी इस साल रायसाहब हो जायँगे। (चुटकी बजा कर) प्रेम बिना.... ।

पत्नी—(चुप रहती है)

शशी०—देखो मणी, जरा ध्यान से दवा देना। (हाथ की घड़ी देख कर)।

मणी—हाँ छोटे बाबू!

शशी०—(गुनगुनाता और जूते चरमराता हुआ मेज के पास जाकर ये दवाएँ हैं। ठीक!

यह कैसा संसार सखी री यह कैसा संसार।
यह कैसा संसार सखी री........

(कन्हैयालाल का प्रवेश)

—बाबू जी! एक खुशखबरी सुनकर आया हूँ।

कन्हैया०—(कुर्सी पर बैठता हुआ) क्या!

शशी०—(वैसे ही चलता हुआ) कैसा टेलीफोन था! वही मिलवालों का होगा। मैं रघुनाथ बाबू को ही दब्बू कहूँगा। क्यों उन्होंने पहले इतनी कमजोरी दिखाई?

कन्हैया०—रघुनाथ का इसमें ज़रा भी दोष नहीं है। वह क्या करे। ये संघ और मंडलवाले ही बदमाश हैं। लोगों को बहकाते हैं और उन्हें लालच देकर उकसाते हैं। रघुनाथ ने वही आई हुई शर्तों पर विचार करने के लिये टेलीफोन किया था।

शशी०—तो आखिर वे चाहते क्या हैं?

कन्हैया०—आठ घंटे की जगह सात घंटे काम। साल में बारह छुट्टियाँ। बीमारी की छुट्टियाँ अलग! क्या कहें मुसीबत होगई है यह मिल।

शशी०—सुना है इस साल कमिश्नर ने आपका नाम रायसाहिबी के लिये 'रिकमेंड' किया है। शहर में बड़ी अफवाह है, अभी ज़ाकिरहुसेन ने कहा था!

कन्हैया०—पर तुम्हारी माताजी को कुछ अच्छा लगे तब न! न मालूम रात से बार बार क्यों चौंक पड़ती हैं!

शशी०—तो आपने रघुनाथ बाबू से क्या कह दिया!

कन्हैया०—डाक्टर कहता था कोई मानसिक रोग है। (सोचकर) क्या किया जाय। बहुतेरा समझाते हैं। न हो तुम्हीं कुछ समय तक अपनी माता के पास बैठा करो! इधर उधर घूमते रहते हो......।

शशी०—मैं ज़रूर चाहता हूँ बैठना, पर आजकल वह 'रिहर्सल' चल रही है न! उसी के मारे। बाबू जी! स्नेहप्रभा की बाबत मेरा ख्याल है वह अच्छी एक्ट्रेस हो सकती है यदि उसे अवसर मिले! आहा उसका गला......!

कन्हैया०—(कड़ुआ घूँट पीकर रह जाता है) चलो जाने दो इन बातों को?

शशी०—अच्छा, (हाथ की घड़ी देख कर) चला! (सर से बाहर चला जाता है)

पत्नी—(करवट बदल कर) देखे पूत के लच्छन!

कन्हैया०—मैं भी यही सोच रहा हूँ। शशी हाथ से निकला जा जा रहा है। पढ़ना लिखना समाप्त। कह रहा है सिनेमा घर खोलूँगा। नाटक चलाऊँगा। न्यू थियेटर्स का काम खूब चल रहा है। उसे तो सिवा नाटक और कम्पनी के कुछ सूझता ही नहीं। क्या किया जाय! पर तुम ठीक हो जाओगी तो यह भी

ठीक हो जायगा। रुपया ही न मिलेगा तो कैसे सिनेमा, नाटक चलता है मैं भी देखूँगा।

पत्नी—(मणी की तरफ़ देख कर) जा थोड़ा पानी गरम कर ला! (मणी संकेत पाकर निकल जाती है) देखो, मुझे तो दीख रहा है कि लड़का ही हाथ से नहीं निकल जायगा तुम्हारी सब जोड़ी हुई सम्पत्ति भी हाथ से निकल जायगी। मैं तो इसी चिंता के मारे घुली जा रही हूँ। वह गया...(लंबी साँस लेकर चुप हो जाती है)

कन्हैया०—तुम तो हो पागल। औरतों में यही तो एक बुरी बात है। जो धुन लग गई उसी के पीछे हाथ धोकर पड़ जाती हैं। रुपया हाथ से निकल जाना हँसी खेल है! और मैं किस लिये हूँ!

पत्नी—अब तो तुम्हारे पास रुपया बहुत हो गया है। जो इच्छा थी सो पूरी होगई?

कन्हैया०—रुपया ऐसी वस्तु है कि उससे पेट नहीं भरता। यह वह आशा है जिसका अन्त नहीं है, यह वह नदी है जिसके किनारे नहीं है। अभी तुमने सुना, बात ठीक है, मैं इस साल रायसाहब हो जाऊँगा। डिप्टीकमिश्नर ने सब से पहले मेरा नाम रायसाहिबी के लिये भेजा है। पहले रायसाहब फिर रायबहादुर। ऐसे बहुत कम आदमी हैं जो प्रजा और राजा दोनों में समान रूप से आदर पा सकें।

पत्नी—तो उस लड़के का पता नहीं लग सकता! देखो, मुझे मालूम हो रहा है मैं बचूँगी नहीं। मुझे दिन रात यही दीखता है कि मैंने बड़ा पाप किया है। इस पाप का बदला हमें मिलेगा। वे दोनों आत्माएँ दिन-रात मुझे घेरे रहती हैं ऐसा मुझे दिखाई देता है। तुम अपने लिये नहीं तो मेरे लिये ही इतना काम करो?

कन्हैया०—मैं इन फ़िज़ूल की बातों में विश्वास नहीं करता। लड़के की बाबत तुम्हें मैंने एक बार नहीं सौ बार कह दिया कि वह अब इस संसार में नहीं है। फिर कैसे मान लूँ कि मैंने किसी का रुपया मार लिया है, किसी को मोहताज कर दिया है। वैसे संदेह का इलाज तो धन्वन्तरि के पास भी नहीं है।

पत्नी—पर मेरी आत्मा को शांति कैसे हो! मुझे तो न जाने क्यों विश्वास नहीं होता। मुझे मालूम है तुम्हारे मत में धर्म अधर्म कुछ भी नहीं है। तुम तो न जाने क्या मानते हो। धर्म-अधर्म कुछ भी न सही, पाप पुण्य कुछ भी न सही, ईश्वर तो है। (एकदम काँपने लगती है, आँखें फेर लेती है) देखो मैं नहीं हूँ। मैं नहीं हूँ। हटो, हट जाओ। क्या करते हो, राक्षसी हूँ मैं। मैं...हाय...रे (बेहोश हो जाती है, कन्हैयालाल दौड़ कर पास आ जाते हैं। और डाक्टर की बताई दवा सुँघाते हैं)

कन्हैया०—ईश्वर मूर्ख पत्नी किसी को न दे। इस अंधविश्वास की भी कोई सीमा है? कोई है? (फौरन नौकर दौड़कर आता है) डाक्टर को टेलीफोन करो; जाओ?

(नौकर चला जाता है मणी गरम पानी करके लाती है और मालकिन की अवस्था देखकर घबरा जाती है तथा शरीर दबाने लगती है)

कन्हैया०—(कमरे में टहलता हुआ) क्या इसका कोई उपाय नहीं है! कोई उपाय नहीं (मुट्ठी भींचकर) मुझे भी कैसा कमज़ोर कर दिया है इसने! सचमुच इस जीवन में मुझे इस कर्म का फल भोगना होगा (टहलता हुआ) पागलपन है। न कोई कर्म है न धर्म। मनुष्य की कमज़ोरी ही पाप है और न कोई पाप है न पुण्य। (सोचकर) यह कमज़ोर स्त्री धर्म धर्म चिल्लाती है इस लिये इसे कष्ट हो रहा है। मुझे तो कोई भी, कहीं भी, कुछ भी दिखाई नहीं देता। सब पागलपन है।

पागलपन ! (ज़ोर से टहलता हुआ ठहर कर मणी से) अब क्या हाल है कुछ ठीक हुआ ?

मणी—सब कपड़े पसीने से भीग गये हैं। कँप-कँपी फिर भी कम नहीं होती। ज़रा आप वह दवा फिर एक बार सुँघाइये न ! मैं देह दबाती हूँ। (कन्हैयालाल का हाथ मणी के हाथ से लग जाता है, कन्हैयालाल हाथ पकड़े रहता है, दोनों एक दूसरे को देख कर मुसकराते हैं।)

कन्हैया०—(थोड़ी देर बाद पत्नी के शरीर पर हाथ रख कर) बुखार फिर बढ़ता दिखाई दे रहा है। (दवा की शीशी लेकर सुँघाने लगता है) इस पागलपन की भी कोई सीमा है। मणी, तुम देखो, मैं डाक्टर को बुलाता हूँ। (बाहर निकल कर चला जाता है)

पत्नी—(उसी अवस्था में) मेरी तरफ़ न देखो ! न देखो ! मैं निर्दोष हूँ। मैंने कुछ भी नहीं किया है। नहीं, मैं राक्षसी हूँ, पापिन हूँ। मैंने ही तुम्हारी सब संपत्ति और लड़के को खा लिया है। मैं पापिन हूँ ! रक्षा करो...। (घिग्घी बँध जाती है) और एक-दम शरीर ठंडा होने लगता है।

(मणि घबराकर रोने लगती है)

मणी—हाय राम रे, न जाने कैसा कष्ट है। इस, धर्मात्मा दयालु स्त्री को। हे राम, रक्षा करो।

(आँखों में आँसू भर आते हैं, खड़ी खड़ी रोने लगती है)

पर्दा गिरता है।

दूसरा अंक

पहला दृश्य

(सायंकाल पाँच बजे—सड़क का एक किनारा—सूर्यकुमार खड़ा है। बाल बिखरे हुए, फटा कुर्ता, एक मैला अँगिया, नंगे पैर। दुर्बल, दीन, भूख का मारा, कांतिहीन चेहरा, पिचके गाल। सड़क पर लोग आ जा रहे हैं। कोई उसे देख-

कर मुँह फेर लेता है, कोई देखता ही नहीं। भूख से व्याकुल।)

सूर्य०—आज दो दिन हो गये रोटी का टुकड़ा भी गले के नीचे नहीं उतरा। शरीर सुन्न होता जा रहा है। पाँवों में खड़े होने की शक्ति नहीं है।

पहला—(दूसरे से) न जाने क्यों खड़ा है। ऐसे घूर रहा है जैसे किसी की चीज़ उठा कर भागेगा।

दूसरा—भूखा मालूम होता है। (पास जाकर) कौन है तू! क्यों खड़ा है ?

सूर्य० - दो दिन से भूखा हूँ।

पहला—(मुँह चिढ़ा कर) सब ने भीख माँगने का काम सँभाल लिया है। मजदूरी क्यों नहीं करता ? (चला जाता है)

दूसरा—कोई काम करो। भीख माँगना बुरी बात है। इतने हट्टे कट्टे जवान हो कोई काम क्यों नहीं करते ?

सूर्य०—अभी जेल से छूटकर आया हूँ। दो दिन से रोटी नहीं मिली!

दूसरा—तभी! मैंने कहा क्या बात है! चोरी की होगी! देश का दुर्भाग्य!

(जाने लगता है एक और आता है)

तीसरा—कौन है तू! यहाँ क्यों खड़ा है!

दूसरा—(मुड़कर) चोर है। अभी जेल से छूट कर आया है।

(चला जाता है)

तीसरा—ऐसे आदमियों को इस तरह छोड़ क्यों दिया जाता है। पुलिस को ऐसों का ख़ास खयाल रखना चाहिये। घूरता कैसे है मानों किसी माल की ताक में हो। सड़क छोड़ कर एक तरफ़ हो (क्रोध से) तुझे मालूम नहीं है लोग आ जा रहे हैं।

सूर्य०—(एक तरफ़ हट कर) क्या करूँ! प्राण निकल रहे हैं! अनाथा-

लय में जाऊँ, वहाँ भी कौन घुसने देगा ! (एक सेठ आता है) सेठ जी ! दो दिन से भूखा हूँ।

सेठ—(धोती सँभाल कर) हैं हैं, सिर पर क्यों चढ़ा जाता है। माँगना माँगना। भूखा है तो मैं क्या करूँ। मैं कौन, जो है सो खाना लिये फिरता हूँ। हटो, पागल ! मेरे पास नहीं है।

(तीसरा आदमी लौटकर)

तीसरा—चोर है चोर ! अभी जेल से छूट कर आया है।

सेठ—(डरकर और एकदम पीछे हटकर) अरे बाबा रे बाबा ! ऐसा ? मैं सोचता था लाओ एक पैसा देदूँ, पर यह तो चोर है ! अबे वो माल चुराया था कहाँ है बोलता क्यों नहीं ? टुकर टुकर देखे है सुसरा कहीं का ! (चला जाता है)

(पूजा के बर्तन, फूल, भोग लेकर एक औरत आती है।)

सूर्य०—(गिड़गिड़ा कर) माता जी, दो दिन से भूखा हूँ। कुछ दीजिये ?

स्त्री—अरे मरे दूर हट, छुए क्यों ले है ! न जाने कहाँ से भुखमरे आजायँ हैंगे। न पूजा न पत्री, इन्हें दे दो। हट परे हट ! (चली जाती है एक ब्राह्मण आता है तिलक लगाये कन्धे पर अंगोछा इतना भोजन किया है कि सीधे चला नहीं जाता डगमगाता सा)

ब्राह्मण—(पेट पर हाथ फेरते हुए डकार लेकर) भई भोजन हो तो ऐसा हो। खीर, पूड़ी, हलवा, लड्डू सभी कुछ था। वाह ! डट कर खाया ! चला भी तो नहीं जाता ! (सामने देखकर छू जाने के डर से) अरे तू कौन है !

सूर्य०—भूख लगी है दो दिन से खाया नहीं है !

ब्राह्मण—भूख लगी है तो क्या मुझे खायगा ? चढ़ा ही आवे है पाजी कहीं का ! अरे भूख लगी है तो माँग कहीं जाकर ! कौन का छोकरा है तू ! हिंदू है न !

सूर्य०—हाँ (बैठता हुआ) हिंदू हूँ !

ब्राह्मण—(आँखें मटका कर) तभी ! तभी भाई तभी ! सब सुसरों ने ब्राह्मणों का रोजगार नष्ट कर दिया ! भूखा है ! मेरे पास क्या धरा है ! (अंटी की ओर हाथ करके) चवन्नी दक्षिणा मिली है तुझे दे दूँ क्या ! पागल ! सुन, सेठ कन्हैयालाल के यहाँ ब्राह्मण भोजन है। शायद कुछ बचा हो। जा कुछ मिल जायगा ! है तो सूम पर न जाने क्यों आज ब्राह्मणों को खिला ही दिया ! जा !

सूर्य०—(बेचैनी से घबरा कर) क्या ऐसे ही मरना होगा ! हाय ! हाय ! (पैर फैला कर और पीछे हाथ टिकाए बैठता हुआ) क्या करूँ !

(एक मौलवी आता है, देख कर)

मौलवी—क्या है, क्यों परेशान है !

सूर्य०—(आह भर कर) भूखा मरा जा रहा हूँ। दो दिन से रोटी नहीं खाई !

मौलवी—अच्छा, हिंदू है क्या !

सूर्य०—(चुप रहता है)

मौलवी—मुसलमान होना चाहता है ? अभी खाना मिलेगा। बढ़िया बढ़िया ! चल ! मेरे साथ चल ! पर याद रख मुसलमान होना पड़ेगा ! या अल्लाह !

सूर्य०—नहीं, मैं मुसलमान नहीं होऊँगा। तुम जाओ !

मौलवी—नहीं होगा तो जा भाड़ में पड़ (देखता चला जाता है)

(एक भिखमँगा आता है)

भिख०—(सूर्य को देख कर) कहो दोस्त क्या बात है !

सूर्य०—दो दिन से भूखा हूँ भाई !

भिख०—अच्छा लो अभी !, बोलो क्या खाओगे ! (थोड़ा सा थैली से निकाल कर) ये ले दो रोटियाँ हैं, सूखी ! और तो कुछ है नहीं ! खाले !

सूर्य०—(उसकी तरफ़ ध्यान से देख कर) नहीं मुझे नहीं चाहिये।

भिख०—(अकड़ कर) नहीं खाता है तो जा जहन्नुम में जा। हाँ, नहीं तो अरे (सामने देख कर) ओ बीरी, बीरी! देख नया आदमी तुझे दिखाऊँ!

(बीरी लड़की आती है)

बीरी—क्या है जलमुँए! क्या है! (सामने देख कर) हैं, ये कौन है! तू कौन फिरके का है रे! नंबरदार वाला या और कोई?

भिख०—भूखा मर रहा है मैंने दो रोटियाँ दीं। पर खावे तो है नहीं। नवाबजादा है नवाबजादा! नया ही शहर में आया है! कौन शहर का है रे! पिरानकलियर का मेला है चलेगा! बीरी भी जा रही है! तुक्का भी! क्यों बीरी!

बीरी—नूसा भी! तिमरा भी! अम्मा भी! आज से अम्मा ने तिमरा को कर लिया है सुना तैनें!

भिख०—तिमरा! तेरी माँ भी सुसरी है अजीब! एक को छोड़े है दूसरे को करे है! तू मुझे कर ले बीरी, (हँसता है)

बीरी—चल जलमुँए! तू क्या खाके मुझे करेगा वो फत्ता कई दिनों से मेरी माँ से कहरिया है! अम्मा जाने भाई!

सूर्य०—(बात सुन कर हँसता है) यह भी नया संसार है। (एक और आदमी आता है सूर्य उससे माँगता है) भूखा हूँ!

(तीसरा जो पहले आया था लौटता है)

तीसरा—चोर है साला!

आगं०—चोर! ठहर! (दौड़ कर चार पैसे की जलेबियाँ ले आता है देकर) ले खाले! कितने दिनों का भूखा है। (सूर्य जलेबी खाता है वे दोनों भिखमँगे भी उसके पीछे पड़ जाते हैं आगंतुक उन्हें झाड़ देता है)

दोनों भिख०—(जाते हुए) ये तेरा कौन लगे है जो हमें नहीं देता!

(चले जाते हैं)

आगा०—चल मेरे साथ चल ! मैं तुझे पेट भर कर रोटी खिलाऊँगा !

सूर्य०—(खाकर) चलो !

(दोनों चले जाते हैं)

पर्दा गिरता है ।

दूसरा दृश्य

(एक होटल का कमरा—बीच में बड़ी टेबल पड़ी है उसके चारों ओर कुर्सियाँ रखी हैं । कुछ दूर हटकर एक मेज के पास दो कुर्सियाँ रखी हैं । दोनों कुर्सियों पर दो लड़के बैठे हैं सामने बाय आकर चाय की ट्रे तथा कुछ खाने का सामान रख गया है । दोनों खाकी निकर और सफेद कमीज़ पहने हैं । उनमें एक सूर्यकुमार है—क्रोध में भरा गुम सुम । दूसरा राजाराम है इसके सिर पर हैट जो माथे को ढक रहा है काला चश्मा । छोटी छोटी मूछें । गले तक गुलूबंद लिपटा हुआ है । दोनों चुपचाप चाय पी रहे हैं)

राजाराम—देखो सूर्य, क्रोध करने और दुखी होने से कुछ भी न बनेगा । संसार उनकी परवा करता है जो यह दिखला देते हैं कि वे साधारण नहीं हैं । जिन पर विचार किये बिना उनका काम नहीं चलता । (चाय पीता है)

सूर्य०—सुन रहा हूँ समझ भी रहा हूँ परंतु क्या करूँ मेरे हृदय में आग जल रही है वह किसी तरह भी बुझने में नहीं आती । क्रोध होता है इस संसार को भस्म कर डालूँ ! यहाँ न्याय, अन्याय कुछ भी नहीं है । अच्छा अब......(चाय पीता है)

राजा०—तुमने देख लिया, कि तुम सच्चे थे फिर भी तुम्हें जेलखाने की हवा खानी पड़ी । और मैं किस से कहूँ उसी धर्मात्मा कन्हैयालाल ने मेरा सब घर बार कुर्क करा लिया दाने दाने को मोहताज कर दिया । भीख माँग कर सड़क पर रातें बिता कर मैं पढ़ा हूँ (चाय पीता है)

सूर्य०—न जाने क्यों मुझे समाज के इन प्रभुओं से बड़ी घृणा होती जा रही है। गरीबों की न जाने कितनी आशाओं को कुचल कर ये लोग उन पर अपना महल खड़ा करते हैं इन्हें क्या अधिकार है सारे संसार का सुख ये ही लोग भोगें। (खाता है)

राजा०—ये सब व्यर्थ की बातें हैं भाई! जिसमें रुपया रखने की शक्ति है वही तो रखेगा। जिसमें कमाने की शक्ति है वही तो कमायेगा!

सूर्य०—अन्याय करके भी! (चाय पीता है)

राजा०—न्याय, अन्याय कोई चीज नहीं है। जीवन की सतह को ठीक बनाये रखने के लिये न्याय बनाया गया है। वह हमने बनाया है, समाज ने बनाया है, राजा ने बनाया है। परंतु सामर्थ्यवान के लिये न्याय वही है जो वह करता है। जो राजा आज हमारे ऊपर राज्य करता है वह न्याय की कितनी दुहाई देता है परंतु किससे छिपा है कि राज्यस्थापन से पूर्व उसने कितना अन्याय किया होगा। एक आदमी को मारने पर फाँसी मिलती है परंतु युद्ध में हत्या करने वाले सिपाही की प्रशंसा होती है। (खाता है)

सूर्य०—ठीक है तुम ठीक कहते हो। मैं अत्याचार को हटाने जाकर स्वयं अत्याचारी बन गया, चोर की चोरी पकड़ने जाकर स्वयं चोर बन गया।

राजा०—बल सब से बड़ी शक्ति है। बली बनो, धनी बनो। तुम ईमानदार कहाओगे, तुम्हारा अन्याय न्याय कह कर पुकारा जावेगा। यही संसार का नियम है।

सूर्य०—तो क्या बल ही न्याय है। न्याय का अस्तित्व तो हुआ न फिर। और एक बार न्याय स्थापित हो जाने पर तो हमें उसके अधीन रहना पड़ेगा ही!

राजा०—ठीक है, पर इससे यह कहाँ सिद्ध हो गया कि न्याय का रूप वास्तविक और सत्य है उसको जो कोई समझदारी से तोड़कर अपना काम निकाल सके वही वास्तविकता है।

सूर्य०—इसका तो यह आशय हुआ कि न्याय कुछ है ही नहीं। (खाता है)

राजा०—यह तो है ही। जो धनी आज धनवान बना है, कौन कह सकता है उसने अन्याय नहीं किया है, उसने कितनों को धोखा नहीं दिया है, उसने कितने गरीबों का रुधिर नहीं चूसा है ? पर उसने उन लोगों की परिस्थिति ऐसी बना दी है कि वे लोग शांति के साथ अत्याचार सह कर भी चुप रहते हैं। और धनी अपना काम चतुराई से निकालता रहता है। क्या धनी का वैसा करके ब्याज लेकर, श्रमिकों को थोड़ी मजदूरी देकर और अपने आप अधिक से अधिक लाभ उठा कर रुपया कमाना न्याय है ? कभी नहीं। फिर भी धनी सदा से वैसा करता आया है, उस पर न न्याय के भंग का अंकुश रहता है न अत्याचार का दायित्व ? जिस राजा की आज पूजा होती है वही कभी डाकू से किसी प्रकार भी कम न था। शक्ति ही न्याय है। (थोड़ा सा खाता है)

सूर्य०—(आश्चर्य से) तुम इतनी बातें जानते हो ? (खाता है)

राजा०—मैंने बारह साल पढ़ा है, नौकरी के लिये दर दर मारा फिरा हूँ ! स्वात्माभिमान की रक्षा मैं नहीं कर सका। रुपयेवालों ने मेरी विद्या को खरीद लेने के साथ साथ मेरी आत्मा को, इच्छा को, मेरी आशाओं को खरीद लेना चाहा, मैं वैसा न कर सका। मैं अपना खून पिला कर उन्हें मोटा न बना सका। इसी लिये मैं नौकरी न कर सका। सेठ कन्हैयालाल ने मेरा मकान कुर्क करा लिया ब्याज बढ़ा कर। एक पैसा

भी मुझे उससे न मिला। इसी लिये मैंने यह पथ पकड़ा है। आज यदि इस काम से मैं रुपया कमा कर बड़ा बन सकूँ तो मैं भी वैसा ही करूँगा, जैसा और लोग करते हैं।

सूर्य०—फिर तो हमें किसी के अत्याचार की निंदा ही नहीं करना चाहिये। मेरा दृष्टिकोण यह है कि हम वास्तविक रोग का इलाज कर सकें?

राजा०—वास्तविक रोग का इलाज न कभी हुआ है न होगा। जो सुधारक सुधार करना चाहता है उसी के अनुयायियों द्वारा कुछ समय बाद बुराई फैलती है। बुद्धधर्म देश की बुराई, हिंसा हटाने आया किंतु उसने हमें निर्जीव बना दिया। मैं तो समझता हूँ बुराई भी संसार के लिये आवश्यक है। बुराइयों, दोषों, अत्याचारों से मानव जाति अपना रूप पहचानती है। इसलिये संघर्ष में संतुलन रखना होगा। संघर्ष में पड़ कर विजय की चेष्टा करनी होगी।

सूर्य०—(कुछ देर चुप रह कर) अभी तो वे लोग आये नहीं?

राजा०—अवश्य आयेंगे, उन्हें आना चाहिये। (उसके कान में कहता है)

सूर्य०—(डर कर) कुछ हो गया तो?

राजा०—घबराते क्यों हो! मैदान में उतरे हो तो यह करना ही होगा।

सूर्य०—अच्छा करूँगा—(इतने में शशिकुमार गुनगुनाता तथा बातें करते कुछ लड़के आते हैं और आकर कुर्सियों पर बैठ जाते हैं)

शशी०—हाँ भई, बोलो क्या खाओगे? (बैरा आकर खड़ा हो जाता है)

रूप०—चाय तो ज़रूरी चीज़ है ही टमाटो चाप भी। मैं तो समझता हूँ आक्सीजन के लिये टमाटर बहुत जरूरी हैं इसमें बी० विटामन होता है।

मोहन०—पागल हो। अरे क्या हर समय हमें डाक्टरों के पीछे

ही दौड़ना है। स्वतंत्र होकर भोजन करो, स्वतंत्र होकर विहार करो। बंधन मृत्यु है। सब लाओ, जो है सभी लाओ। बैरा, क्या देखते हो!

बैरा—जी बहुत अच्छा। (चला जाता है)

रूप०—ठहरो जिसमें प्रोटीन हो ऐसे पदार्थ मँगाओ, फास्फोरस हो वे चीज़ें लाओ।

मोहन०—हाँ ठीक है सोयाबीन के पत्ते, गाजर, ककड़ी, ज्वार, गेहूँ, दाल इन्हें लाकर खिलाओ।

रूप०—तुम्हें नहीं मालूम मोहन! देखो शशी, कैलशियम हमारी हड्डियाँ बढ़ाता है। कालीमिर्च, अदरक, बकरी के दूध का प्रयोग जब तब करते रहना चाहिये। यह मैंने आज ही तो पढ़ा है।

शशी०—तुम्हारे जैसा पागल मैंने कोई नहीं देखा। डाक्टरी क्या पढ़ ली दिमाग़ ही खराब होगया है।

(बैरा चाय आदि सामान लाकर मेज पर रख देता है)

मोहन०—होलू है होलू! (खाता है)

जमुना०—होनोलूलू। (हँसता हुआ चाय तैयार करता है और एक एक प्याला सब को देता है)

रूप०—हँसते हो। जीवन-सत्व के विषय में प्रत्येक मनुष्य को कुछ न कुछ जानना चाहिये। हमारे भारत में लोग इतने मूर्ख हैं कि शरीर की रक्षा करना तनिक भी नहीं जानते। जनाब, विज्ञान ने आज संसार में क्रांति उत्पन्न करदी है क्रांति। अभी उस दिन हमारे प्रोफ़ेसर ने कहा था कि...।

शशी०—चलो रहने दो तुम उजबक हो। (चाय पीता है)

जमुना०—जो आदमी जितना पढ़ जाता है वह उतना ही संसार में दुख बढ़ाने का कारण बनता है। हर समय जब देखो तब

ऐसी चिंताओं में पड़ा रहता है। कवि हुआ तो आसमान की ओर ताकता रहेगा। कहानीकार हुआ तो आँखें फाड़ फाड़ कर दुनियाँ को देखेगा। डाक्टर हुआ तो रूपचंद बन जायगा। (सब हँसते हैं)

शशी०—(चाय पीते हुए) किसी ने ठीक कहा है कि अज्ञान ईश्वर की देन है। न तो अज्ञानी आदमी को दुख होता है न कुछ। हमें ही देखो न कभी खाने में परहेज़ करते हैं न कोई विचार! जो आया सो खा लिया।

रूप०—तो इससे कितनी हानि होती है जानते हो? किसी डाक्टर को बीमार पड़ते न देखा होगा। तुम्हारे ऐसे ही बीमार होते हैं। तब डाक्टरों के पास दौड़ते हैं। (चाय पीता है)

मोहन०—हाँ, डाक्टर तो कभी बीमार पड़ते ही नहीं। जनाब, जब वे बीमार पड़ते हैं तब 'रामनाम सत्य' ही सुनाई देता है। और मैं तो कहता हूँ बीमार पड़ना भी स्वास्थ्य के लिये हितकर है। (खाता है)

शशी०—(अट्टहास करके) वाह, क्या बात कही है। बीमार पड़ने से स्वास्थ्य बढ़ता है भई डाक्टर! मैं तो मूर्खता को भी गुण मानता हूँ। (चाय का प्याला हाथ में लिये रहता है)

जमुना०—(खाली प्याला मेज़ पर रखता हुआ) हम ऐसे युग में रहते हैं जहाँ विद्वान्, सभ्य बनने के सिवा काम नहीं चलता। चारों तरफ़ यही पुकार है कि सभ्य बनो, शिक्षित बनो। होता यह है जितना ही आदमी सभ्य होता जाता है उतनी ही उसकी कठिनाइयाँ बढ़ती जाती हैं। पहले लोग न बहुत पढ़ते थे न ऐसे दुखी थे। मैं आज तुम्हें यह बताना चाहता हूँ कि पढ़ना, सभ्य बनना अपने कष्टों को बढ़ाना है।

रूप०—क्या खूब, नया मत है। मूर्खता भी गुण है! (हँसता है)

मोहन०—(खाते हुए) सुनिये सुनिये, हाँ भई, आगे !

जमुना०—(साँस लेकर) मैं सच कहता हूँ मज़ाक नहीं, मैं कहता हूँ मनुष्य समाज का कल्याण शिक्षा से, पांडित्य से, बौद्धिक विकास से कभी संभव नहीं है। यदि तुम चाहते हो कि संसार सुख से रहे तो मूर्खता का प्रचार करो।

रूप०—(डाट कर) कोई काम की बात करो ?

जमुना०—यह काम की बात नहीं है वाह, खूब कही, जनाब, बाइबल में भी मूर्खता के गुण लिखे हैं।

रूप०—(आश्चर्य से) बाइबल में !

जमुना०—कबीर ने भी कहा है।

मोहन०—जमुना, हाँ भाई, बाइबल में क्या लिखा है !

शशी०—मूर्ख शास्त्र का पूर्ण अध्ययन किया है जमुना ने !

जमुना०—(गंभीर होकर) तुम मज़ाक समझते हो। लो सुनो, To increase Knowledge is to increase sorrow ! अर्थात् ज्ञान-वृद्धि विपत्ति का बढ़ाना है।

शशी०—सुना रूपचंद, यहाँ बिना प्रमाण के बात नहीं करते !

मोहन०—कबीर का भी सुना दो। ज़रा रूपचंद को मालूम तो हो और लोग मूर्ख ही नहीं हैं !

जमुना०—अबे क्या यह दिया ! मूर्खता तो एक गुण है।

मोहन०—हाँ, भूल हुई। लो सुनो ! एक वाक्य मुझे भी याद आ-गया। चार्ल्सलेब ने एक जगह कहा है I love a fool अर्थात् मैं मूर्ख को प्यार करता हूँ क्यों कैसी कही ! (हँसता है) हमारे शास्त्रों में भी...।

जमुना—तुलसीदास जी ने लिखा है—

"सब ते भले हैं मूढ़, जिन्हें न व्यापे जगतगति"

इसलिये यदि तुम चाहते हो कि संसार में सुख-शान्ति रहे तो मूर्ख धर्म का प्रचार करो।

शशी०—भाइयो, यह भी धर्म है सुना आप लोगों ने? मेरा तो विचार है एक सभा बनाई जाय। उसके सभापति हों श्री जमुनाप्रसाद मूर्खराज!

रूप०—शशीकुमार मंत्री। मोहनलाल कोषाध्यक्ष।

जमुना०—(गंभीर होकर) सज्जनो, (खड़े होकर) यदि आप लोग संसार में सुख-शांति चाहते हैं तो मूर्ख बनिये।

शशी०—सज्जनो, संसार के कल्याण का मार्ग एकमात्र मूर्ख बनना ही है। ओः आज एक महत्त्व की बात जानी!

रूप०—क्या!

मोहन०—यही कि मूर्खता गुण है, मूर्खता कला है, मूर्खता शक्ति है।

जमुना०—यद्यपि मूर्खों के मूँछ नहीं होती वे भी मनुष्य ही होते हैं तो भी वे सदा भोले भाले और आडंबर शून्य होते हैं।

रूप०—कोई निंदा करे तो दाँत भर निपोर देंगे।

जमुना०—सच तो यह है उनसे संसार का मनोरंजन भी होता है। ऐसे लोग अपने आप बुरा नहीं मानते, दूसरे को खुश करते हैं स्वनामधन्य मूर्ख व्यक्ति को संसार की किसी वस्तु से न तो मोह होता है न गिला! (हँसता है) कहिये मूर्ख-राजगण, इसके अतिरिक्त एक बात और है प्रकृति मनुष्य को मूर्ख पैदा करती है। (रूपचंद से) तुम्हारा विज्ञान कहता है कि प्रकृति के अनुसार चलो फिर प्रकृति के अनुसार चलना कब हो सकता है जब मनुष्य मूर्ख रहे?

मोहन०—बाइबल में लिखा है ईश्वर ने मनुष्य को रोक दिया कि तुम उस बाग के (ठहर कर) किस बाग के? फल न खाना! फल खाने से कठिनाइयाँ बढ़ेगी।

जमुना०—बड़े पते की बात है। (हँसता है)

मोहन०—रुपये वाले भी तो मूर्ख ही होते हैं।

शशी०—(चौंक कर) कैसे !

जमुना०—देखो मैं बताता हूँ रुपया कमाने वाले सेठ क्या बहुत पढ़े होते हैं। वह तो महाजनी जानते हैं उसी से वारे के न्यारे करते रहते हैं तुम्हारे जैसे डाक्टर उन्हीं के द्वार पर झख मारा करते हैं।

मोहन०—सेठों के द्वार खटखटाया करते हैं।

शशी०—रुपया भी बड़ी चीज़ है। मैं तो रुपये को महत्त्व देता हूँ। रुपये के बल से बड़े बड़े विद्वान् को खरीदा जा सकता है। ऊँचे से ऊँचा यश प्राप्त किया जा सकता है। (जेब से निकाल कर) ये पाँचसौ रुपये के नोट हैं। अगर चाहूँ तो बड़ी से बड़ी रंडी को घर पर नचा सकता हूँ। बड़े से बड़े अफसर को बुला सकता हूँ, असंभव को संभव करके दिखा सकता हूँ। कौन कह सकता है इनका महत्त्व नहीं है। (बंडल मेज़ पर फेंक देता है) और तुम डाक्टर हो, क्या दवा देकर यहाँ होटल में बैठकर खा सकते थे ?

मोहन०—चार धक्के मार कर निकाल दिये जाते !

शशी०—पर मैं इनसे होटलवाले को दास बना सकता हूँ। जो चाहूँ कर सकता हूँ।

रूप०—(घृणा से मुँह फेर लेता है सब खाना समाप्त कर देते हैं, इधर राजाराम एक दम सूर्य को मारने लगता है और ऐसा धक्का देता है कि सूर्यकुमार शशी के ऊपर जाकर गिर जाता है। वह फिर भी उसे पीटता रहता है। सब लोग एक दम खड़े हो जाते हैं। राजाराम जहाँ मेज के पास नोटों का बंडल पड़ा रहता है वहाँ पहुँच जाता है सब उसे बचाने दौड़ते हैं)

राजाराम—(क्रोध से हाँफता हुआ) उठ, उठ बदमाश कहीं का, कभी ऐसा किया तो जान निकाल दूँगा (बकता हुआ बाहर हो जाता

है। सूर्यकुमार से सब लोग हाल पूछने लगते हैं। वह रुआंसा सा मुँह लेकर खड़ा रहता है कहता कुछ भी नहीं है। कुछ देर बाद जोश में आकर)

सूर्य०—(क्रोध में आकर एकदम) **मैं भी देखता हूँ उस पाजी को।**

(चटपट निकल जाता है सब लोग अपनी अपनी जगह बैठ जाते हैं, कुछ देर तक चुप्पी रहती है)

सब—न मालूम क्या बात हुई !

मोहन०—मालूम होता है आपस की शत्रुता थी।

रूप०—नहीं वे दोनों बैठे तो देर से थे।

जमुना०—मूर्खता के पूरे उपासक नहीं थे।

शशी०—(मेज पर बंडल न पाकर जेब टटोलता है) **नोट थे मेरे !**

सब—नोट, हाँ मेज पर ही तो थे मेज पर देखो ! (सब हैरान रह जाते हैं)

शशी०—(घबरा कर और सोचकर) **वही लेगया !** (औरों पर भी शक करता है)

सब—(अपनी अपनी जेबें दिखाते हुए) **हमारी जेब देख लो भाई।**

शशी०—(फीकी हँसी हँस कर) **आज रुपयों की दावत हुई। चलो, ज़रा पता लगाओ न !**

रूप०—बहुत बुरा हुआ ! (सब लोग होटल का बिल चुकाकर बाहर निकल जाते हैं।)

पर्दा गिरता है।

—:•:—

तीसरा दृश्य

(सड़क का चौराहा लोग आ-जा रहे हैं। एक अखबारवाला चिल्ला रहा है—'आज की सच्ची खबरें, सेठ कन्हैयालाल के घर डाका, चोर बारह हज़ार तिजोरी तोड़ कर ले गये ! अनाथालय के मंत्री हुकमचन्द को रात को घर जाते समय लूट लिया, दो हज़ार छीन लिये ! आज के ताजे समाचार ! हिन्दी-मिलाप दो पैसे में।'

दो आदमी उधर आते हुए अखबार खरीद कर आगे बढ़ जाते हैं। फिर एक आदमी आता है पर अखबारवाला बराबर चिल्लाता रहता है। इसके बाद दो आदमी आकर अखबार खरीदते हैं। फिर तीन आदमी आकर अखबार खरीदते हैं और वहीं खड़े होकर पढ़ने लगते हैं। समाचार पत्र वाला बेचता हुआ आगे निकल जाता है।)

तीनों—(वहीं खड़े होकर पढ़ते हुए)

'शहर में भयंकर चोरियाँ, लूट-मार !'

(शीर्षक के बाद नीचे लिखा समाचार पढ़ते हैं।)

'पिछले एक मास से नगर में चोरी की घटनाएँ हो रही हैं। इससे पूर्व सेठ कन्हैयालाल के लड़के की जेब से किसी ने पाँच सौ रुपये के नोट निकाल लिये थे। उसके बाद उनके मिल के मैनेजर से किसी ने दो सौ रुपये के नोट रात में जाते हुए छीन लिये। इसी प्रकार नगर के भिन्न-भिन्न भागों में चोरी की घटनाएँ हो रही हैं। मालूम होता है चोरों का कोई समूह है। कल रात सेठ कन्हैयालाल के घर घुसकर चोरों ने तिजोरी तोड़ कर बारह हज़ार रुपया उड़ा लिया। उनकी बीमार पत्नी पास ही कमरे में थीं। उन्होंने आहट सुनी। जब तक घर के लोग जागे कि चोर रुपया लेकर भाग गये। पुलिस चोरों की खोज में व्यस्त है। अभी तक चोरों का पता नहीं लग रहा है।'

(फिर आगे पढ़ते हैं)

'किसी ने अनाथालय के मंत्री सेठ हुकमचंद से भी कल रात नगर के बाहर पुल के पास रुपये छीन लिये। पाँच सौ रुपये की संख्या बताई जाती है।'

पहला—अच्छा है ये लोग भी तो किसी के साथ नेकी नहीं करते। किसी ने ठीक कहा है—सूम का माल चोर खाय।

दूसरा—सेठ कन्हैयालाल तो बड़ा दानी आदमी है। उसने अभी एक धर्मशाला बनवाई है।

तीसरा—वह तो उसकी स्त्री के नाम से है। इसमें उनका क्या ?

दूसरा—आखिर रुपया क्या स्त्री घर से ले आई, सेठ ने ही तो दिया होगा ?

पहला—उसका लड़का भी तो बड़ा आवारा है। सुना है किसी लड़की के प्रेम में पड़ा है। बिचारी भली लड़की को बदनाम कर दिया। संभव है उसीने चोरी की हो।

दूसरा—कहा नहीं जा सकता कब, कौन, कैसा हो जाय ? मालदार आदमियों के लड़के खराब न होंगे तो क्या हमारे-तुम्हारे होंगे जिन्हें खाने का भी ठीक नहीं है।

तीसरा—इसमें सेठ साहब की क्या गलती है ? शास्त्र में लिखा है प्रेम तो मालदार, गरीब नहीं देखता। मन आये की बात है। रीझ गया होगा। भला वह है कौन ?

पहला—अरे वही बाबू पन्नालाल की लड़की। कालेज में पढ़ती है वह भी क्या कम होगी ?

दूसरा—तुम सब को एक ही लकड़ी से क्यों हाँकते हो, तुम्हारे पास क्या प्रमाण है कि लड़की खराब है, क्या कालेज में पढ़ने से ही कोई खराब हो जाता है ?

तीसरा—आखिर किताबों में है ही क्या, यही प्रेम की शिक्षा तो है! फिर लड़कों में रह कर वह कैसे बची रह सकती है! शास्त्र में लिखा है घी आग के पास बिना पिघले नहीं रह सकता ! आजकल की पढ़ाई ही ऐसी है।

पहला—तो विलायत में लड़कियाँ खराब क्यों नहीं होतीं !

तीसरा—विलायत की भली चलाई। वहाँ कौन वे बचती हैं। वहाँ इससे भी अधिक हैं। अभी उस दिन हमारी समाज में व्या-

ख्यान हो रहा था वहाँ एक उपदेशक ने बताया कि विलायत में एक एक औरत दस दस ब्याह करती है। इसीलिए शास्त्र कहता है कि स्त्री स्वतंत्र नहीं हो सकती।

दूसरा—बिलकुल झूठ है। वहाँ एक आदमी एक ही स्त्री से विवाह कर सकता है। ऐसे ही नहीं छोड़कर चली जाती। इसके अतिरिक्त मैं तो शिक्षा का उद्देश्य यही मानता हूँ कि उसके द्वारा मनुष्य का शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक विकास हो। वह अपना भला बुरा सोच सके।

तीसरा—पर क्या ऐसा होता है? हम तो यह देखते हैं कि आजकल की शिक्षा से मनुष्य का जीवन आडंबरमय हो गया है। जितना वह नहीं होता उतना दिखाने का यत्न करता है, जितना वह नहीं है उतना बनने का यत्न करता है। हाँ, यदि खर्च बढ़ाना, टीप टाप से रहना सिखाना हो तो आजकल की शिक्षा उपयुक्त है। मेरा तो विचार है कि हमने जो अनजान में इतनी आवश्यकताएँ बढ़ा ली हैं हम उन्हें सँभाल नहीं पाते। तुम क्या समझते हो ये चोरी करनेवाले पढ़े लिखे न होंगे? बहुत से इनमें ऐसे भी मिलेंगे जो शिक्षा प्राप्त करके आवश्यकताएँ बढ़ने पर उन्हें पूरा न कर सकने और बेकारी के कारण ऐसे बुरे कामों के लिये उतारू हो गये होंगे। शास्त्र...।

दूसरा—हाँ यह तो ठीक है। यह शिक्षा हमारा आध्यात्मिक विकास नहीं करती। मनुष्य का समाज के प्रति, देश के प्रति क्या कर्तव्य है इसका ज्ञान ही नहीं होता!

तीसरा—जो शिक्षा हमें ठीक कर्तव्य के लिये प्रेरित नहीं करती, जो हमें स्वार्थ-त्याग का पाठ नहीं पढ़ाती, आवश्यकता पड़ने पर बड़े से बड़े बलिदान के लिये तैयार नहीं करती, वह भी कोई शिक्षा है?

दूसरा—भई, शिक्षा तो मेरे मत में वही ठीक है जिसको प्राप्त करके हम बड़े से बड़ा बलिदान कर सकें, सादगी, उच्च विचार, देश-भक्ति, समाज-रक्षा, दृढ़ता आदि गुण शिक्षा से उत्पन्न होने चाहिये। तभी वह सत् शिक्षा है। रही पेट भरने की बात वह तो कुत्ता भी भर लेता है।

(एक और आदमी का प्रवेश, अख़बार हाथ में देखकर)

आगं०- क्या खबर है ?

पहला—(अखबार हाथ में देकर) लो पढ़ लो।

आगं०—मैं पढ़ना क्या जानूँ; मजूर आदमी! सुना शहर में बड़ी चोरियाँ हो रही हैं। क्या सेठ कन्हैयालाल के घर भी चोरी हुई है ?

दोनों—हाँ! क्या तुम उन्हीं के यहाँ काम करते हो!

आगं०—उनकी मिल में काम करते हैं साब? आज तो हड़ताल होनी थी!

तीनों—(आश्चर्य से) क्यों ?

आगं०—क्या बतायें साब! वे सभावाले कहते हैं हड़ताल करो, हड़ताल करो! हम तो भूखे मर जायेंगे साब, पूछो पिछली हड़ताल में क्या मिल गया!

दूसरा—हड़ताल आखिर तुम्हारे ही लाभ के लिये तो है! थोड़े दिन यदि भूखों भी मरना पड़े तो अंत में तो सुख है ?

पहला—ये हड़तालवाले ऐसे काम न करें तो उनका पेट कैसे भरे। भला बताओ जो मिल रहा है उससे भी हाथ धो बैठें ?

तीसरा—सब उचक्के हैं। हमारे उन कादिरमियाँ को जानते हो!

दूसरा—कौन कादिर ?

तीसरा—अरे वही, जो पहले ताँगा हाँकता था आज लीडर बना हुआ है ?

दूसरा—हाँ, हाँ, ! उसने क्या किया ?

तीसरा—तुम यहाँ नहीं थे उन दिनों। उसने लोगों को भड़का कर म्यूनिसिपैलिटी के रेट के खिलाफ ताँगों की हड़ताल करा दी। हर आदमी से चार-चार आने चंदे के वसूल किये। तुम्हें मालूम है शहर में चार हज़ार ताँगेवाले हैं। बस साहब, हड़ताल शुरू हो गई। दो दिन, चार दिन। लगे ताँगेवाले भूखों मरने। फैसला हुआ था कि चंदे से गरीब ताँगेवालों की सहायता की जायगी, पर एक भी पैसा किसी को न मिला, सब पचा गये। म्यूनिसिपैलिटी ने फुसला कर कुछ लोगों को ताँगा चलाने को कहा, लोग मान गये। क्या करते भूखों मरते ! आप उड़ गये दिल्ली ! आकर लोगों से कहा मैं बड़े अफसर से मिलने गया था। तुम चार-चार आने और दो तो काम चले !

दूसरा—यह तो नेता का दोष है, काम का नहीं ?

आगं०—ऐसे ही ये लोग भी खा जायँगे साब ?

दूसरा—तुम्हें कोई कष्ट है कि नहीं ?

आगं०—है क्यों नहीं साब, है भी और नहीं भी !

दूसरा—कैसे, दोनों बात कैसे हो सकती हैं ?

आगं०—काम बहुत है, सबेरे छः बजे से साँझ के छः बजे तक काम करना पड़ता है इसलिये तो है और नहीं इसलिये कि कुछ तो मिलता है। हाँ, साब सच्ची बात है ?

दूसरा—तो क्या तुम चाहते हो कि तुम्हारे काम के घंटे कम कर दिये जायँ !

आगं०—कौन नहीं चाहता साब !

दूसरा—तो तुम्हें त्याग तो करना ही पड़ेगा। कुछ कष्ट तो सहन करना ही पड़ेगा ! बिना रोये तो माँ भी दूध नहीं पिलाती ! हड़ताल से……।

दोनों—चलो चलें, कहाँ झगड़े में पड़ गये !

दूसरा—ठहरो, हाँ भाई, देखो, मैं हड़ताल करानेवालों में नहीं हूँ। पर मैं समझता हूँ हड़ताल के बिना तुम्हारा कल्याण नहीं है। यही एक केवल अस्त्र है तुम्हारे पास जिससे तुम्हें सुविधाएँ मिल सकती हैं।

आगं०—(ध्यान से सोच कर) अच्छा साब ? (आश्चर्य में खड़ा रहता है)

(जाते हैं)

पर्दा गिरता है।

चौथा दृश्य

(समय सबेरे के सात बजे—राजाराम अकेला जंगल में एक झोंपड़े के आगे बैठा है। कुछ कुछ धूप निकल आई है। पास ही कुछ खेत लहराते दिखाई पड़ रहे हैं।)

राजाराम—(सोचता हुआ) अभी तक नहीं आया, आ तो जाना चाहिए। क्या हो गया होगा ? थोड़े ही दिनों में बड़े चमत्कार दिखाने लगा है आशा से भी अधिक ! मालूम होता है जैसे पहले से ही सब सीखा हुआ हो, परन्तु समझ में नहीं आता इस सब से मेरा उद्देश्य क्या है ?

(एक आदमी उधर से आ निकलता है।)

आगं०—राम राम ! अभी आये हो ?

राजा०—हाँ ?

आगं०—अकेले ही होगे ! चलो अच्छा हुआ झोंपड़ा बस गया। रहोगे तो क्या, वैसे जगह बुरी नहीं है !

राजा०—(अचानक बिना इच्छा के बोलने से अनखाता सा) हाँ ? कह तो दिया !

आगं०—(चलने की तैयारी करता हुआ) हम गवाँर आदमी हैं गवँई गाँव के। अच्छा, राम राम !

राजा०—(उसकी विवशता से प्रसन्न होकर) बैठो, यहीं रहते हो गाँव में ?

आगं०—(बैठ कर) हाँ, यह पास ही हमारा खेत है। पहले यहाँ एक साधु रहते थे। बड़ी रौनक रहती थी। दिन-रात दम लगते थे। दो-दो रुपये का सुलफा सोहबत में फूँक देते थे। बड़ी दूर से आते थे लोग। बड़े अफसर भी। एक दिन डाकू पकड़ा उन्होंने। पीछे से मालूम हुआ कि कोई अफसर साधु के भेस में था। देखने में अच्छे थे !

राजा०—(चौंक कर) तो यह झोपड़ी उन्होंने ही बनाई थी !

आगं०—हाँ।

राजा०—(संशय में पड़ कर) जाते हुए ठहर गये हैं, एकाध दिन रह कर आगे चले जायेंगे। भाई की प्रतीक्षा है।

आगं०—ठहरो न ! घर की बात है।

(सूर्यकुमार आता है)

राजा०—अच्छा राम राम।

आगं०—(उठ कर चलता हुआ) राम राम, कोई चीज की जरूरत हो तो तुम्हारा घर है। पास ही रहता हूँ। मेरा नाम रामभोला है। दस बीघे के दो खेत हैं। तीन भैंसें हैं, एक की पड़िया अभी मरी है पिछले फागुन में। चार प्राणी हैं। भगवान की दया से एक लड़का अभी बैसाख में हुआ है। एक लड़की है ब्याहने जोग। गाँव के आदमी हैं। बोलना नहीं आता माफ़ करना। वैसे कोई चीज चहिये तो हाजिर है। तुम तो बड़े आदमी होगे ? राम राम। (चला जाता है)

राजा०—सूर्य देखा तुमने, कितना सीधा, सरल, निष्कपट है। सचमुच गाँव के लोग सतयुगी होते हैं। यह बिचारा क्या जाने कि हम कौन हैं !

सूर्य०—(अहंकार में भर कर) मुझे तो ऐसा देख पड़ता है। मानों मैं इसी काम के लिये पैदा हुआ हूँ भाई राजाराम !

राजा०—कितना मिला ?

सूर्य०—(दोनों भीतरी जेबों से नोट और रुपये निकालता हुआ) एक हजार से कुछ कम ! साँझ को एक यात्री का गला दबोचा और पिस्तौल की नोंक से सब रखवा लिया। दूसरा और था !

राजा०—कौन था दूसरा !

सूर्य०—मैं कन्हैयालाल के घर के पास घूम रहा था कि वही मिल गया !

राजा०—कौन क्या अमरनाथ कन्हैयालाल का मुनीम ?

सूर्य०—हाँ, रात तो थी ही। एक आदमी भी साथ था। साथी न जाने क्यों घर के भीतर चला गया। वह हाथ में कुछ दबाये जा रहा था। सोचा कागज़ होंगे। पीछे से जा कर एक झाँपड़ तानकर मारा तो बच्चू चारोंखाने चित्त हो गये। जब तक सँभले तब तक मैं नौ दो ग्यारह हो गया ! वे कागज़ नहीं नोट थे।

राजा०—किसी ने पहचाना तो नहीं ?

सूर्य०—(अट्टहास करके) कौन जानता ! (वह गाँववाला फिर लौट कर)

आगं०—न हो तो इस गरीब के घर ही आज रूखी सूखी जीम लो !

राजा०—नहीं भाई, तुम्हारी कृपा है हम लोग अभी यहाँ से जा रहे हैं !

आगं०—नहीं, ठहरो, मैं दूध लाता हूँ। निन्ने मुँह जाना ठीक नहीं है। (रुपये की ओर ताक कर) बड़े आदमी होंगे, न जाने कहाँ जा रहे होंगे ! (दौड़ जाता है।)

सूर्य०—सीधा है !

राजा०—हाँ, सीधा आदमी है। शिष्टाचार न जानता हुआ भी प्रेम का भूखा है। देख नहीं रहे मैंने ही बातें नहीं की। फिर भी इतिहास सुना गया ! अब तो तुम बहुत चतुर हो गये हो !

मैं कदाचित् इतने काम ऐसी सफलता से न कर पाता सूर्यकुमार!

सूर्य०—गुरु तो तुम्हीं हो!

राजा०—(रुपये जेब में रखता हुआ) ये सब तुम्हारे ही हैं सूर्य भाई!

सूर्य०—क्या परवा है! रुपया अब मैं बाएँ हाथ का खेल समझता हूँ।

राजा०—मैंने सोचा है रुपया हाथ में आते ही हमें कोई काम प्रारंभ कर देना चाहिये।

सूर्य०—अगर पकड़े न गये पर काम तो बुरा ही है?

राजा०—चतुराई से सब काम होते हैं।

सूर्य०—मेरी इच्छा है उस मैनेजर से पूरा बदला लूँ।

राजा०—किसी दिन भी उसकी मरम्मत की जा सकेगी इच्छा होते ही! सोचता हूँ वह गाँववाला आवे कि उससे पहले ही हमें यहाँ से हट जाना चाहिये।

सूर्य०—क्यों?

राजा०—इसलिये कि कहीं हमारा गुप्तभेद इन लोगों को न ज्ञात हो जाय। और तुम समझते हो कि ये काम कितनी सावधानी, चतुराई से होते हैं। ऐसे कामों में सगे भाई का भी विश्वास नहीं करना चाहिये।

सूर्य०—तुम्हीं ने उस दिन कहा था इससे हम दूसरों का उपकार कर सकते हैं न्याय की प्रतिष्ठा कर सकते हैं। हमें किसी से भी डरने की आवश्यकता नहीं है राजाराम!

राजा०—लोग तो इस काम को बुरा समझते ही हैं।

सूर्य०—पर मैंने क्या सोचा है जानते हो?

राजा०—क्या!

सूर्य०—इस रुपये से गरीबों का उपकार, उनका उद्धार करूँगा! मेरे हृदय में एक आग जलती रहती है भाई!

राजा०—पर मेरा जीवन उद्देश्य यह नहीं है मैं तो चाहता हूँ जैसे और लोग मालदार हो गये हैं वैसे ही मैं भी उन्हें लूट कर मालदार बन जाऊँ। संसार वैभव को चाहता है, मैं भी संसार का सभी सुख इस रुपये की बदौलत देखना चाहता हूँ।

सूर्य०—(अपने ध्यान में) जिस समय मुझे बिना अपराध कन्हैयालाल ने जेल भिजवा दिया उसी समय मुझे मालूम हो गया कि हमारी जाति हीन, अपाहिजों की जाति है उसका अंग-अंग सड़ गया है। कुछ स्वार्थी लोग जाति की दरिद्रता, बेबसी, मूर्खता की आड़ लेकर उसे और कमजोर बना रहे हैं। जेल में जो रिश्वत देता था उसे सब सुविधाएँ थीं, अच्छा खा सकता था, अच्छा पहन सकता था। और तो और व्यभिचार भी अपना खूब रंग लाता है वहाँ।

राजा०—यह तो संसार है। यहाँ सभी कुछ है इसी लिए तो मैं कहता हूँ रुपया ही सब कुछ है।

सूर्य०—किन्तु यह तो बीमारी का इलाज नहीं है ! यह तो बीमार को अच्छे कपड़े पहना कर उसे तड़क-भड़क के साथ लोगों के सामने स्वस्थ कह कर दिखाना भर है।

राजा०—होगा, तुम इन झगड़ों में क्यों पड़ गये। (शराब की बोतल जेब से निकाल कर हँसता हुआ) तुम जानते हो यह क्या है ?

सूर्य०—(देख कर) यह तो शराब की बोतल है ! तो क्या तुम शराब भी पीते हो !

राजा०—कभी कभी, तुम भी लो न ! (डाट खोलने लगता है।)

सूर्य०—(राजाराम का हाथ पकड़ कर) नहीं भाई, यह कभी नहीं हो सकता। मैं तुम्हें गिरने न दूँगा। यह हमारी हत्या है भाई राजाराम ! यह बहुत बुरी वस्तु है ! मैं इतना नहीं गिर गया हूँ। (छीन लेता है।)

राजा०—(क्रोध से) तुम इसे बुरा कहते हो, पर तुम्हें मालूम है कोई भी बड़ा आदमी ऐसा नहीं है जो शराब न पीता हो। मैं चाहता हूँ तुम भी पियो और देखो दुनियाँ का कितना रस इस वस्तु में है।

सूर्य०—नहीं भाई, यह नहीं हो सकता। तुम मेरे साथ यह काम नहीं कर सकते। (बोतल एक तरफ फेंक देता है।) यह हमारे जीवन का उद्देश्य नहीं है!

राजा०—(झुँझलाकर) फिर मेरा तुम्हारा निर्वाह नहीं हो सकता। तुमने बिना सोचे समझे बोतल फेंककर मेरा अपमान किया है। मैं तो सभी चीजें जीवन में उपयोगी समझता हूँ। कोई भी पाप करते हुए मुझे डर नहीं लगता। मेरी दृष्टि में न कोई पुण्य है न पाप। तुम यह बताओ तुम ने बोतल क्यों फेंक दी! नालायक, पाजी कहीं के! (सूर्य के एक थप्पड़ मारता है)

सूर्य—(चुप रह कर) यह तुम ने क्या किया!

राजा०—(मन में) यही अवसर है। (प्रकट) मैं तेरी बोटी बोटी काट डालूँगा सूअर! तू ने क्या समझा है! मैं तुझे पकड़वा कर ही दम लूँगा। (रुपया दबाये हुए चलने लगता है)

सूर्य०—देखो राजाराम, व्यर्थ में तुम इतना क्रोध करते हो! तुम ने मुझे मारा फिर भी मैंने तुम से कुछ नहीं कहा! तुम ने मुझे इतनी गालियाँ दीं मैंने कुछ नहीं कहा! (हाथ पकड़ कर) तुम्हीं सोचो, हम ने प्रारंभ में जो प्रतिज्ञा की थी क्या यह उसके अनुसार है! हम ने उस समय गरीबों की सेवा करने का ही प्रण तो किया था!

राजा०—(मन ही मन प्रसन्न होकर) तुम्हारा मेरा मेल नहीं हो सकता! तुम ने मेरी इच्छा के विरुद्ध काम किया। मैं तुम्हारी सेवा के सिद्धांत से सहमत नहीं हूँ। खैर, तुम सँभल कर रहो

अब तुम बच नहीं सकते। और इस रुपये में से तुम्हें एक पाई भी न मिलेगी। (जाता है)

सूर्य०—सुनो राजाराम!

(पीछे दौड़ जाता है और नेपथ्य में कोलाहल होता है। उदास सा पीछे लौट कर देखता है कि गाँववाला अपनी सत्रह वर्षीय कन्या के साथ दूध और भोजन लिये आ रहा है, सूर्य को देख कर)

रामभोला—वे तुम्हारे भाई कहाँ गये!

सूर्य०—चले गये! (सिर झुकाये बैठा रहता है।)

राम०—तुम भी जा रहे हो न? यह थोड़ा भोजन करलो फिर जाओ! हम गाँववाले स्वागत, सत्कार नहीं जानते, फिर भी तुम्हें भूखा तो गाँव से नहीं भेज सकते। तो क्या वे तुम्हारे भाई नहीं लौटेंगे? देखो, ज़रा देर होगई। इसकी (लड़की की ओर संकेत करके) माँ ने कहा दूध से अकेले कैसे काम चलेगा। तो उसने कुछ रोटियाँ भी बनादी हैं। लो खाओ! क्या वे अभी गये हैं। मैं उन्हें ढूँढ लाता हूँ। दो बिटिया इन्हें दो।

(निकल जाता है, नेपथ्य से 'सुनो तो, अरे सुनो तो कहाँ गये भाई', पुकारने की आवाज़ आती है।)

लड़की—(संकोच में भर कर सामने एक बर्तन में दूध डालती है और सूर्य की ओर बराबर देखती रहती है। जब सूर्य निगाह उठाकर उसे देखता है तो वह निगाह हटा कर दूसरी ओर देखने लगती है। बहुत देर तक यही क्रम रहता है अंत में भोजन परोस कर सामने रखती है) यह भोजन कर लो न?

सूर्य०—नहीं, मैं तुम्हारे सत्कार के योग्य नहीं हूँ। (उठ कर टहलने लगता है और लड़की की तरफ़ देखता जाता है।)

लड़की—हम गाँव के आदमी हैं तुम शहर के हो बड़े आदमी! दादा कह रहे थे बड़े आदमी हैं। यह दूध...।

सूर्य०—(कुछ देर चुप रह कर) तुम बड़ी भोली हो। तुम्हारा नाम-क्या है!

लड़की—(संकोच से) सुखदा!

सूर्य०—(लड़की की ओर देखते रह कर) सुखदा! सुंदर नाम है।

(टहलने लगता है।)

सुखदा—यह दूध पी लो न! (सतृष्ण नेत्रों से सूर्यकुमार की ओर देखती है।) क्या सोच रहे हो! हम...

सूर्य० —(एक दम घूम कर) और न पीऊँ तो! (हँसता है।)

सुखदा—(मुस्करा कर चुप हो जाती है।)

सूर्य०—(आगे आकर) हाँ बोलो, न पीऊँ तो क्या करोगी, तुम जानती हो मैं कौन हूँ!

सुखदा—जानती हूँ!

सूर्य०—(उसकी आँखों में आँखें गड़ा कर) बताओ मैं कौन हूँ भला?

सुखदा—(संकोच से) बड़े आदमी हो, रुपयेवाले?

सूर्य०—(पास जाकर) सुखदा!

सुखदा—(उसी संकोच से) क्या!

सूर्य०—नहीं, झूठ है, मैं बहुत बुरा आदमी हूँ। तुम सुनोगी तो डर जाओगी!

सुखदा०—(विश्वास न करती हुई शरमा कर) मैं क्या जानूँ! दूध पी लो न?

सूर्य०—तुम बहुत सुंदर हो सुखदा। जैसा नाम वैसा रूप!

(दूध हाथ में लेकर पी जाता है।)

सुखदा—(संकोच से उठने लगती है) दादा आते होंगे।

सूर्य०—ठहरो सुखदा, अभी तुम्हारे पिता नहीं आये हैं! ओः ग्राम-कन्याएँ कितनी भोली होती हैं!

सुखदा—तुमने बताया नहीं!

सूर्य०—क्या ?

सुखदा—(शरमा कर) अपना नाम ! अब मैं जाती हूँ। न मालूम दादा कब आवेंगे !

सूर्य०—मेरा नाम जान कर तुम क्या करोगी। तुम्हारा विवाह हो गया है सुखदा !

सुखदा—(संकोच में) ब्याह ? (चुप होकर चलने लगती है पर मुड़कर सूर्य की ओर भी देखती है। सूर्य आगे बढ़कर उसका हाथ पकड़ने की चेष्टा करता है।) यह क्या करते हो ?

सूर्य०—(ग्लानि से) देखो सुखदा, मुझे क्षमा करना। मुझ से भूल होगई !

सुखदा—हाँ, ऐसा नहीं चाहिये। पर तुम कोई बुरे आदमी थोड़े ही हो !

सूर्य०—तुम क्या मुझे अच्छा आदमी समझती हो !

सुखदा—हाँ !

(रामभोला का प्रवेश)

राम०—वह नहीं मिले ! न जाने कहाँ रोटी मिलेगी उन्हें ! भैया, तुमसे कुछ कहा सुनी होगई क्या ! भले आदमी तो थे बिचारे !

सूर्य०—(चलता हुआ) देखो, मैं डाकू हूँ डाकू !

(रामभोला के किसी प्रश्न का उत्तर न देकर चला जाता है।)

सुखदा—(घबरा कर देखती रहती है।) डाकू ? हैं ?

राम०—डाकू ! डाकू ! (डरकर लड़की का हाथ पकड़ लेता है।)

सुखदा—नाम भी तो न बताया ! (उधर देखती हुई एकाएक उदास हो हो जाती है।) नहीं झूठ है। डाकू नहीं हैं। ऐसे अच्छे आदमी डाकू नहीं हो सकते क्यों दादा !

राम०—हाँ बेटी, चलो, न जाने कैसी है दुनियाँ।

सुखदा—(गहरी साँस लेकर) हुँ···ा···च···लो !

(एक बूढ़े आदमी का दौड़ते हुए प्रवेश)

आगं०—वह कहाँ गया !

राम०—कौन ?

आगं०—बहुत दिनों से उसे ढूँढ़ रहा हूँ क्या अभी गया !

राम—कौन ?

आगं०—अच्छा ? चला गया, नहीं मिला ? (जाता है ।)

सुखदा—यह कौन था ?

राम०—न जाने !

(उदास से सब सामान लिये चले जाते हैं ।)

पर्दा गिरता है ।

—:o:—

तीसरा अंक

पहला दृश्य

(बाबू कन्हैयालाल का बड़ा कमरा । कमरा सब तरह से पश्चिमी ढंग से सजा हुआ है । एक बड़ा कालीन चारों ओर, सोफ़ा सेट बीच में और एक छोटी-सी मेज़ पर झालरदार रेशमी कपड़ा बिछा है । एक गुलदान में फूलों का गुच्छा है । बिजली का पंखा चल रहा है । दीवार के साथ कार्निस पर धूप बत्तियाँ जल रही हैं । कमरा सुगंध से महक रहा है । समय सायंकाल छै बजे, कन्हैयालाल कमरे में नहीं हैं उनके मिल के मैनेजर रघुनाथ एक कागज़ों का बंडल लिये और हड़ताली सभा के मंत्री देवधर दोनों आमने सामने बैठे हैं ।)

रघु०—देखो देवधर, यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि मैं तुम्हें यहाँ क्यों लाया हूँ !

देव०—श्रमिकों का निर्णय कराने और क्यों, यदि ठीक ठीक निर्णय हो जाय तो निश्चय ही हम लोग हड़ताल रोक सकेंगे । सेठ साहब ही एक ऐसे व्यक्ति हैं जो चाहें तो हड़ताल रोकी जा सकती है । रघुनाथ बाबू, मैं तुम से मैनेजर की दृष्टि से नहीं, एक व्यक्ति के रूप से पूछता हूँ क्या तुम लोगों ने जो निश्चय किया है वह सिद्धांत के अनुकूल है ?

रघु०—मैं तो अवसरवादी हूँ देवधर! जिस समय जैसा आ पड़े उस समय वैसा करना मैं सिद्धांत मानता हूँ। मैं चाहता हूँ तुम सेठ साहब को धमकी दो और मिल बंद कराओ।

देव०—(प्रसन्नता से) ऐसा! किंतु मैं नहीं समझ सका आप ऐसा क्यों चाहते हैं?

रघु०—(दाँत पीस कर) न मालूम मैं क्या चाहता हूँ, पर इतना चाहता हूँ कि एकदम......।

देव०—अर्थात्?

रघु०—अर्थात् वर्थात् कुछ नहीं। तुम जानते हो पिछले एक साल से मिल में घाटा हो रहा है। कभी कोई चीज खराब हो जाती है कभी कोई गड़बड़ी पड़ जाती है। तुम्हें मालूम है श्रमिकों को ठीक ठीक मजदूरी न मिलने पर उनको उकसाने में मेरा भी तो कुछ हाथ है!

देव०—मैं मानता हूँ आपकी श्रमिकों के साथ सहानुभूति है, किंतु प्रकट तो हम देखते हैं......।

रघु०—प्रकट तुम यह देखते हो कि मैं उनको खूब दबाता हूँ, सताता हूँ, अधिक से अधिक काम करने को उन्हें मजबूर करता हूँ। छुट्टियाँ भी कम देता हूँ। वेतन भी काट लेता हूँ। मैं चाहता हूँ उनमें असंतोष की भावना जागे, जिससे वे अपना मार्ग निश्चित कर सकें।

देव०—बड़ी विचित्र बात है! एक तरफ तो आप मजदूरों का सुधार चाहते हैं दूसरी तरफ उन्हें कष्ट भी देते हैं। हाँ, आप के कहने का क्या यह आशय है कि एकदम निर्णय नहीं होना चाहिए? देखिये, आप मुझे धोखे में न रखिये साफ कहिये।

रघु०—(बात बदल कर) धोखा कैसा, मैं तो बिल्कुल स्पष्ट मनुष्य हूँ! मैं हृदय से श्रमिकों का कल्याण चाहता हूँ।

देव०—तो उन्हें सताते क्यों हैं ! आपके जैसे शुभ विचार वालों से उन्हें कष्ट क्यों होता है ? यह क्या ऐसा नहीं है जैसा 'कोई चोर से कहे चोरी कर और धनी से कहे जागते रहो !' मुझे दुःख है आप की नीति......।

रघु०—देखो, मैं कन्हैयालाल की मिल का एक मैनेजर हूँ। मेरा कर्तव्य है कि मालिक का काम ठीक तरह से करना, परंतु मेरी आंतरिक सहानुभूति तो श्रमिकों के साथ है न ? मैं मालिकों में जागृति चाहता हूँ बस और कुछ नहीं।

देव०—वह तो मैं भी चाहता हूँ, परंतु आंतरिक सहानुभूति प्रकट करने का कोई मार्ग भी तो हो !

रघु०—वह नौकरी छोड़ देने पर प्रकट की जा सकती है इसके पूर्व नहीं।

देव०—(सोचकर चुप रह जाता है।) तो आप आखिर चाहते क्या हैं ?

रघु०—कुछ नहीं......वही जो होना चाहिये। अभी सेठजी आते हैं तुम्हें उनके सामने अधिक-से-अधिक माँग रखनी चाहिये।

देव०—किंतु अभी तो वे आये नहीं हैं !

रघु०—आज वे 'रायसाहब' हो गये हैं काम अधिक है आते ही होंगे।

(सेठ कन्हैयालाल का प्रवेश। दोनों उठकर अभिवादन करते हैं।)

कन्हैया०—(देवधर की ओर देखकर) आप ?

रघु०—आप मजदूरसंघ के मंत्री मिस्टर देवधर हैं।

कन्हैया०—लेकिन आज तो मुझे इनसे बात करने का अवकाश है नहीं। (देवधर से) आप समझ सकते हैं मैं आज कितना अधिक व्यस्त हूँ, फिर किसी दिन सही।

रघु०—हाँ, फिर किसी दिन सही !

देव०—देखिये सेठ साहब, हम लोग बहुत [illegible]। अब कुछ-न-कुछ निर्णय अवश्य होना चाहिये। आप [illegible] अब बातें

मान लेने पर और मिल-मालिक शर्तें स्वीकार करने को बाध्य किये जा सकेंगे ! (टेलीफोन की घंटी बजती है)

कन्हैया०--(रिसीवर हाथ में उठाकर देवधर से) अच्छा, फिर सोचूँगा। इस समय तो......।

देव०--(निराश होकर चला जाता है।)

कन्हैया०--हेलो, हेलो......हाँ, हाँ, क्या है! आप कहाँ से बोल रहे हैं, क्या कहा......ऐं, सेठ साहब हैं।........धन्यवाद........जी आपकी कृपा है। हाँ, देवधर अभी बैठे थे मैंने उन्हें टाल दिया है।......हाँ, हाँ मैं देखूँगा। पर आपको भी तो कुछ मानने से पहले आपस में निर्णय कर लेना चाहिये। हाँ, ठीक है। अच्छा (रिसीवर रख देता है।)

रघु०--इससे अधिक प्रसन्नता क्या हो सकती है कि आपकी सेवाओं को सरकार ने भी स्वीकार किया है, और आपको रायसाहब बना दिया है। मैं तो सुन कर गद्गद हो उठा हूँ बाबू साहब ! (कुछ ठहर कर) लोग.........लोग चैन नहीं लेने दे रहे हैं...।

(टेलीफोन की घंटी बजती है।)

कन्है०--हेलो...नमस्कार...हा हा हा...आप हैं...आपकी कृपा है। हाँ, गवर्नमेंट का तो मैं धन्यवाद करता ही हूँ; पर यह सब आप लोगों की कृपा का फल है ऐसा मुझे मानना चाहिये। पार्टी की क्या बात है जब कहिये तब।......क्या कहा....... कल......इतनी जल्दी ! पर इतनी जल्दी कैसे प्रबन्ध हो सकेगा ! क्या कहा......आप सब भार अपने ऊपर ले लेंगे ! अरे, सब आपको तो करना ही पड़ेगा। हा हा......अब आपकी बारी भी तो है;.......नहीं, नहीं आप जैसों के लिये यह कौन कठिन है। नमस्कार ! (रिसीवर रखकर) क्या कहा जाय पार्टी तो......।

रघु०—देनी ही पड़ेगी ! देनी आवश्यक भी है बाबू साहब !

कन्हैया०—मैं चाहता था घर में ज़रा तबियत ठीक हो जाती। क्या बताऊँ रघुनाथ बाबू, घर की दृष्टि से जीवन भार हो गया है।

रघु०—हाँ बाबू साहब ! क्या अभी कोई उन्नति दिखाई नहीं देती !

कन्हैया०—(उसी तरह से) कुछ फ़र्क़ जरूर है पर इतना नहीं जितना होना चाहिये।

रघु०—(अपने आप) कोई डाक्टर न छोड़ा, कोई वैद्य न छोड़ा जिसका इलाज न किया गया हो। ईश्वर करे। मेरा विश्वास है इस समाचार से माता जी को अवश्य प्रसन्नता होगी। बीमार पर प्रसन्नता का समाचार बड़ा प्रभाव डालता है। क्या आपने इस समाचार को सुनने के बाद उन्हें देखा है ! क्या किया जाय रुपया तो पानी की तरह बह रहा है।

कन्हैया०—(ठहर कर) रुपये की मुझे कोई चिंता नहीं है। रुपया जितना भी लगे मैं लगाने को तैयार हूँ पर आराम तो आवे !

रघु०—'रायसाहब' के खिताब को सुनकर उन पर अवश्य अच्छा प्रभाव पड़ेगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

कन्हैया०—(चुप हो जाता है।)

रघु०—(उनके मुँह की ओर देखता रह कर) अब तो उन्हें अवश्य ठीक हो जाना चाहिये। रायसाहबी मिलना क्या साधारण बात है। यह भी बड़े तप का फल है बाबू जी ! नहीं तो शहर में धनी क्या थोड़े हैं। सेठ छीतरमल, सेठ मुन्नालाल, बाबू चुन्नीलाल न जाने कितने ऐसे हैं जो इस पद के लिये तरसते हैं फिर भी कोई उन्हें नहीं पूछता !, सरकार केवल रुपया ही तो नहीं देखती ! योग्यता, प्रभाव सभी कुछ तो देखती है !

(फिर टेलीफोन की घंटी बजती है।) लीजिये फिर कोई बधाई देना चाहता है।

कन्हैया०—अभी एक घंटे में कोई तीस टेलीफोन आ चुके हैं और आज दोपहर से लगभग पचास आदमी घर बधाई देने आ चुके हैं। (रिसीवर हाथ में लेता हुआ) हलो .....(हैरान होकर) हलो कौन है आप...कहाँ से बोल रहे हैं.......मिल से....अच्छा कहिये ! हाँ क्या कहा...कल छुट्टी है ही मिल में। मैंने रघुनाथ बाबू के द्वारा यह कहलवा दिया है। (रिसीवर हटा कर रघुनाथ से) आपने कल की छुट्टी तो 'एनाउन्स' कर दी है न ? (रिसीवर लगा कर) ये रघुनाथ बाबू मेरे ही पास बैठे हैं, वे कहते हैं छुट्टी की सूचना लगवा दी गई है। क्या कहा, लोग जमा है क्यों ? क्या बहुत भीड़ इकट्ठी हो गई है दरवाजे पर ? क्यों ? (रघुनाथ घबड़ा कर रिसीवर के पास आकर खड़ा हो जाता है।) लोग क्या चाहते हैं ! क्या कहा ? एक मास का वेतन ? नहीं, यह नहीं हो सकता। मैं एक दिन की छुट्टी से अधिक कुछ नहीं कर सकता। क्या ? लोग हड़ताल करना चाहते हैं ? क्यों ? एक मास का वेतन या पुरानी शर्तें ? लेकिन मैं इससे अधिक कुछ नहीं कर सकता। (रिसीवर रख देता है।) पागल हैं लोग, कहते हैं एक मास का वेतन इस खुशी में मिलना चाहिये। दस हजार तो वेतन में दूँ और चार पाँच हजार पार्टियों में लगेगा। कुछ सरकार को भी देना पड़ेगा। मालूम होता है लड़ाई तेजी पकड़ रही है। यह नहीं हो सकता !

रघु०—(हाथ जोड़ कर) बाबू जी ! (टेलीफोन की घंटी फिर बजती है।)

कन्हैया०—(झल्ला कर रिसीवर उठा कर) हलो, क्या है ? अच्छा...... (हँस कर) आप हैं क्षमा कीजिये। मैंने समझा मिल से टेली-

फोन आया है, हाँ मैंने समझा मिल से टेलीफोन आया है इस लिये जरा! क्षमा चाहता हूँ। देखिये, मुझे अभी मालूम हुआ है मेरी मिल के लोग हड़ताल करने पर तुले हुए हैं। अच्छा हो आप जरा ध्यान रखें उनके मुखिया लोगों का,...... मैं अधिक सजा दिलाना नहीं चाहता......हाँ—कुछ डाट डपट हो जाय! हाँ, ठीक है बस, बस हाँ, बधाई तो आपको ही है। मैं क्या चीज हूँ। आप लोगों की कृपा है। देखिये पार्टी मैं जरूर दूँगा। अच्छा, अच्छा हाँ, जी, (हँस कर) कृपा है, (रिसीवर रख देता है।) बड़ा बुरा हुआ मैंने समझा फिर मिल का कोई आदमी होगा। टेलीफोन था पुलिस सुपरेंटेंडेंट का! खैर!

रघु०—(कागज़ सामने फैला कर) बाबू साहब, हमारे बहुत कुछ देते रहने पर भी लोग चाहते हैं कि उनकी पुरानी शर्तें स्वीकार की जायँ। मैं अब तक आज कल कह कर टालता आया हूँ। मैं चाहता हूँ उनमें से कुछ एक को इस रायसाहिबी की खुशी में संतुष्ट अवश्य किया जाय। इसी बहाने वे आपके अनुयायी हो जायँगे और दूसरों को दबा कर रख सकेंगे। मैं तो मज़-दूरों को खूब दबा कर रखने में विश्वास करता हूँ।

कन्हैया०—मुझे तुम्हारी यह शर्त भी स्वीकार नहीं है। मैं कोई बात उनकी स्वीकार नहीं कर सकता। (क्रोध से) तुम अपना काम करो रघुनाथ बाबू! जो होगा मैं देख लूँगा। अब तो मैं राय-साहब हो गया हूँ, सरकार मेरी पीठ पर है। यह उन लोगों की बदमाशी है जो हमें हड़ताल की धमकियाँ दे रहे हैं। न हो दस दिन के लिये मिल बंद कर दो। अपने आप सब ठीक हो जायँगे।

रघु०—फिर तो और भी लोग हमारे विरुद्ध हो जायँगे। बहुत से

तो दूसरी मिलों में चले जायँगे ! काम का नुकसान होगा सो अगल ! इतना कच्चा माल पड़ा है उसका क्या होगा ? आठ की जगह सात घंटे मान लेने में हर्ज़ ही क्या है ?

कन्हैया०—जहाँ एक साल से घाटा हो रहा है वहाँ एक यह भी सही। बाकी उन्हें साल में बारह छुट्टियाँ भी हैं और स्त्रियों को मास में चार दिन की छुट्टी भी तो है ! कैसे मान लूँ इतनी बातें ! घर ही न लुटा दूँ रघुनाथ बाबू ?

रघु० - सुना है और मिलों के मालिक मानने को तैयार हैं यदि आप मान लें !

कन्हैया०—अच्छा सोचूँगा। (धीरे धीरे कन्हैयालाल की पत्नी का प्रवेश)

पत्नी—सोचना नहीं, मानना पड़ेगा। मुझे ज़रा भी चैन नहीं मिलता ! (दोनों उठकर खड़े हो जाते हैं।)

कन्हैया०—अरे, तुम यहाँ क्यों आगई ! मैं ही आजाता। बैठो। (हाथ पकड़ कर बैठाता है। थकी हुई पत्नी कमज़ोरी के कारण आँखें बंद कर लेती है।)

पत्नी—मैं सब सुन चुकी हूँ ! (रघुनाथ की ओर देखती है।)

कन्हैया०—तुम्हें और कुछ काम है रघुनाथ बाबू !

रघु०—कुछ कागज़ों पर हस्ताक्षर कराने थे ? (सामने फैलाने लगता है)

कन्हैया०—(स्त्री की ओर देखता है।)

पत्नी—कर दो, सब पर हस्ताक्षर कर दो। और देखो, मैं पंद्रह दिन का वेतन...(चुप हो जाती है।)

कन्हैया०—क्या, नहीं ऐसा नहीं हो सकता ?

पत्नी—(सँभलकर) नहीं, तुम नहीं रोक सकते। मैं पंद्रह दिन का वेतन देना चाहती हूँ मज़दूरों को इस रायसाहिबी की खुशी में। (पति से) तुम मेरे बीच में मत बोलना।

कन्हैया०—लोग बिगड़ जायँगे रानी ! अच्छा रघुनाथ बाबू !

पत्नी—एक मास का तुम्हें रघुनाथ !

रघु०—(हाथ जोड़ कर) कृपा है आपकी। दयामयी माताजी ! मैं अब ठीक कर लूँगा उन्हें। नहीं तो मुझे !

कन्हैया०—नहीं तो मुझे क्या !

रघु०—त्यागपत्र देना पड़ता !

कन्हैया०—किंतु इतना दबाना भी ठीक नहीं है जिससे लोग बिगड़ उठें।

रघु०—मेरा विचार था इस खुशी में आधे दिन की छुट्टी देना ठीक होता। खैर।

कन्हैया०—ये मंत्री महाशय क्या कहने आये थे !

रघु०—अपनी पुरानी शर्तें लेकर घूमता है। कोई काम-धाम तो है नहीं इसे। मैंने कहा हमारे सेठ साहब 'रायसाहब' हो गए हैं इन्हें बधाई तो देदो। तो कहने लगा मैं इसमें विश्वास नहीं करता।

कन्हैया०—पागल है ऐसे को तुम यहाँ लाये क्यों ?

रघु०—सनकी है। पढ़ा लिखा तो काफ़ी है पर...।

कन्हैया०—हाँ मैंने तुम्हें इसलिये बुलाया है कि (पत्रों के ढेर की ओर संकेत करके) इनका उत्तर देना है। कुछ समाचार-पत्रों में भी सूचनाएँ छपनी चाहिये। पार्टी का प्रबंध भी करना होगा। मैं चाहता हूँ दस हजार रुपया 'वार-फंड' में दिया जाय। चार पाँच हज़ार पार्टी में खर्च हो जायगा। (चपरासी आकर एक पत्र देता है, कन्हैयालाल पत्र खोलकर पढ़ना चाहता है पर अंग्रेजी में होने के कारण पत्र रघुनाथ को दे देता है, रघुनाथ पत्र पढ़ता है।)

रघु०—सरकार की तरफ़ से पत्र है कि—मिल की तमाम बनी हुई चीज़ें सरकार खरीदना चाहती है लड़ाई के लिये। सरकार चाहती है खाकी जीन ही आप आगे को बनायें। सरकार को

विश्वास है कि रायसाहब कम कीमत पर मामूली लागत लेकर सरकार की इस आड़े समय में मदद करेंगे। ब्यौरेवार बात चीत के लिये अपने मैनेजर को बीस मई के दस बजे सुबह मिस्टर ब्रिक प्राइवेट सेक्रेटरी गवर्नर से मिलने भेज दीजिये। (पत्र मेज पर रख देता है।)

कन्हैया०—हूँ (सोचता हुआ) ठेका है। उधर हड़ताल का डर इधर सरकार की माँग। चलो अच्छा है हड़ताल रोकने का प्रबंध भी सरकार खुद करेगी। मैं एकबार इनको दिखा देना चाहता हूँ कि मज़दूरों को बहकाने का क्या फल होता है।

रघु०—इसका अर्थ यह हुआ कि बिना लाभ के, सरकारी नियंत्रण में काम करो। (हाथ मसल कर) सब तरफ मुसीबत है।

कन्हैया०—मैं मिल बंद कर देना चाहता हूँ रघुनाथ! पिछले एक साल से इसमें बराबर घाटा हो रहा है। आखिर मैं कहाँ तक घाटा सहन करूँगा। मेरी समझ में नहीं आता जब काम पूरा है तो घाटा क्यों होता है?

रघु०—घाटा तो नहीं हैं हाँ लाभ काफ़ी नहीं है। बात यह है चीज़ें उतनी अच्छी नहीं बन पातीं जो बाजार में ऊँचे दाम डाल सकें। इसके अतिरिक्त पिछले साल रूई की गाँठों में आग लग गई थी। पंद्रह हजार का तो उसी में घाटा बैठा।

कन्हैया०—खैर! जाओ, देखो सरकार क्या चाहती है!

—(पत्नी से) यह तुम्हारा सरासर अन्याय है? अच्छा जो चाहो करो!

पत्नी—(रघुनाथ से) जाओ रघुनाथ बाबू। पंद्रह दिन के वेतन की सूचना देदो। जाओ। (रघुनाथ कागजों पर हस्ताक्षर कराता है। कन्हैयालाल हस्ताक्षर कर देता है। रघुनाथ चलने लगता है, पत्नी तब तक देखती रहती है।) इस वेतन की रकम परसों मिल जानी चाहिये। समझे रघुनाथ बाबू!

रघु०—(मालिक की ओर देखता हुआ) जी, बहुत अच्छा !

पत्नी—(हाथ में से कड़े निकालती हुई) यह लो मेरे कड़े । इनसे श्रमिकों का वेतन पूरा होगा !

कन्हैया०—(पागल सा देखता रह कर) यह क्या करती हो ! जाओ । रघुनाथ !

पत्नी—(हाथ में कड़े देती हुई) लो ये ले जाओ । ये दस हज़ार के कड़े हैं, जितना लगे लगाओ बाकी मुझे देना । (रघुनाथ कड़े लेने लगता है, कन्हैयालाल देखता रहता है, पत्नी पति की कुछ भी परवा न करके) इस जीवन में बड़े पाप किये हैं रघुनाथ बाबू ! जाओ ! (चला जाता है)

कन्हैया०—इसमें मेरी हँसी है रानी !

पत्नी—परंतु मेरी तो खुशी है ! (मुस्कराती है ।) अब मैं कितने दिन की हूँ जो यह सब देखूँ ! मेरे सामने दिन रात वही दृश्य रहता है नाथ ! (आँखें बन्द कर लेती है ।) दिन रात वही... उठते बैठते...वही, जैसे कोई मेरे प्राणों को कचोट रहा हो । नहीं अब मैं और न जी सकूँगी ! मेरी एक ही शिकायत तुमसे रही । तुमने वैभव के लिये मनुष्यता को छोड़ दिया ।

कन्हैया०—तुम पागल तो नहीं हो गई हो सुषमा ।

पत्नी—नहीं मैं पागल नहीं हूँ नाथ, मैं तुम्हारी दासी हूँ । मैं तुम्हारा कल्याण चाहती हूँ । मैं तुमसे जीवन की भिक्षा चाहती हूँ । मैं धन नहीं चाहती, वैभव नहीं चाहती, सुख नहीं चाहती, मैं संतोष चाहती हूँ वही मुझे नहीं मिल रहा है ।

कन्हैया०—क्या, क्या इतना धन पाकर, वैभव पाकर भी संतोष नहीं ! आखिर तुम मुझसे चाहती क्या हो ?

पत्नी—मेरे हृदय में ऐसा विश्वास बैठ गया है कि जो तुम्हारा

नहीं है उसे तुम पाकर मनुष्यत्व से...क्या कहूँ !

कन्हैया०—तुम्हें कैसे मालूम है कि जो मेरा नहीं है वह मैंने अन्याय से पाया है।

पत्नी—मैंने तुम्हारे ही मुख से सुना है !

कन्हैया०—(क्रोध और आश्चर्य से) कैसे ?

पत्नी—जेठ जी और लड़के मरने के बाद जब तुम घर लौट कर आये तो रात को स्वप्न में तुम्हें मैंने कहते सुना है कि मैंने पाप किया है ! मैं पापी हूँ। मैंने ही भाई की हत्या की है !

कन्हैया०—(अपने भावों को देखते हुए) तुमने यह कहते सुना !

पत्नी—हाँ, सोते सोते एकबार नहीं कई बार तुमने ऐसा कहा और बड़बड़ा कर जागने पर तुम्हारा सब शरीर पसीने से नहा जाता था। बस, वही भय मेरे हृदय में बैठ गया है। मैं देखती हूँ, नित्य ही आँखें मीचते देखती हूँ कि उनकी डरावनी सूरत मेरे सामने खड़ी है। जैसे तुम उनके गले पर छुरी फेर रहे हो उनकी आँखें निकल पड़ी हैं। और वे अंधे से होकर मुझे शशी को और तुम्हें पकड़ने दौड़ रहे हैं। मेरे जी में ऐसा बैठ गया है कि उन्हें तुमने मरवा डाला है। नहीं तो क्यों मुझे हर समय वैसा दिखाई देता है ?

कन्हैया०—यह तुम्हारी कमज़ोरी है। और कुछ नहीं। तुम्हें वहम हो गया है सुषमा !

पत्नी—कदाचित ऐसा ही हो, परंतु मैं...। (चुप हो जाती है।)

कन्हैया०—प्रथम तो वह सब भ्रम है, मान लो ऐसा हुआ भी हो तो अब क्या हो सकता है !

पत्नी—उनके लड़के को उसका दे दो !

कन्हैया०—(उपेक्षा दिखलाते हुए) सब व्यर्थ की बातें हैं। रुपया खो देने की वस्तु नहीं है। आज संसार रुपये का है। जिसके

पास धन है, वही बड़ा है, वही यशस्वी, वही सब कुछ। मैं तुम्हारी धार्मिक भावनाओं में आकर अपना सर्वनाश नहीं कर सकता सुषमा !

(नौकर का घबराते हुए प्रवेश)

नौकर—अनर्थ हो गया सरकार ! बड़ा अंधेर है दिन दहाड़े डाका माई बाप ?

कन्हैया०—(उत्सुकता और आश्चर्य से) क्यों क्या हुआ रे !

सुषमा—(घबराती हुई) क्या हुआ रामदीन !

नौकर—माई बाप, कहते हैं रामसुख सराफ अपनी दुकान पर बैठे हुए रुपये गिन रहे थे। सराफ़ा सरी साँझ से तो बंद हो ही जाता है। केवल उन्हीं की दुकान खुली थी। कुछ सुनसान था। मुनीम कुछ लिख रहा था कि इतने में एक आदमी ने आकर पिस्तौल की नोक से सारा रखवा लिया। दोनों की घिग्घी बंध गई। कहते हैं माई बाप, सब लेकर चला गया ! कोई बीस हज़ार का माल होगा माई बाप ?

कन्हैया०—(डरते हुए) अच्छा। न जाने क्यों शहर में इतनी चोरियाँ हो रही हैं। चोर पकड़ा ही नहीं जाता। सब पुलिस परेशान है। हमारी चोरी का भी अभी तक कुछ पता नहीं लगा। देखो, दो चौकीदार और बढ़ा दो। (पत्नी की ओर देखकर) अरे, तुम्हें....बेहोश होगई ! (पत्नी बेहोश हो जाती है सब लोग दौड़ते हैं, और उसे उठाकर दूसरे कमरे में ले जाते हैं। कन्हैयालाल स्त्री की कमज़ोरी और चोरी के समाचार पर घबराया हुआ सा विचार करने लगता है। बिजली की बत्तियाँ एक दम बुझ जाती हैं कन्हैयालाल नौकरों को आवाज़ लगाता है। एकबारगी आवाज भर्रा उठती है। इतने में एक आवाज़ सुनाई देती है "पाप पाताल से भी बोलता है यह भी जीवन है।" कुछ भी दिखाई नहीं देता वह घबरा कर वहीं गिर पड़ता है।)

पर्दा गिरता है।

दूसरा दृश्य

(स्थान सड़क का किनारा—शाम का फुटपुटा एक वृक्ष के नीचे एक पुरुष बिना कपड़े के सिर्फ लंगोटी ही लगाये पड़ा है बेहोश। पास ही एक सत्रह साल की लड़की अर्धनग्न शोक में बैठी है। बार बार पिता की ओर देखती है और आँखों में आँसू भर कर रोने लगती है। पुरुष लड़की का बाप है जिसके सिर से बहुत रुधिर बह चुका है।)

लड़की—(किंकर्तव्य विमूढ़ सी) हाय क्या करूँ ! (रोने लगती है।)

घायल पुरुष—(थोड़ी देर बाद आँखें खोल कर) आः, आः, सब बदन तोड़ दिया ! हाः। (फिर आँखें बन्द कर लेता है।)

लड़की—दादा, कैसी तबीअत है ?

घायल०—अब मैं न बचूँगा बेटी ! कैसी मुसीबत है, हाय राम रे ! तमाम देह टूट रही है।

लड़की—घर होती तो....न जाने किस घड़ी में घर से निकले थे ? राक्षस ने सब लूट लिया, कपड़ा तक !

घायल०—शरीर सुन्न होता जा रहा है। क्या पानी न मिलेगा बेटी ! (आँखें बन्द कर लेता है।)

लड़की—(घबरा कर) पानी, न जाने पानी कितनी दूर हो ?

(एक आदमी उधर से निकलता है।)

आगं०—क्या बात है (आदमी को देख कर) इसे किसी ने मारा है क्या ?

लड़की—हाँ, शहर से आ रहे थे रास्ते में लूट लिया किसी ने ! सब छीन लिया। दादा को मारा। मार मार कर अधमरा कर दिया ! (रोती है।) मैं तो घर का रास्ता भी नहीं जानती। पानी मिलेगा !

आगं—(डर कर) क्या डाकुओं ने लूट लिया ? पानी यहाँ कहाँ है तेरा बाप है ?

लड़की—हाँ, सब छीन लिया। मेरे कपड़े भी उतार लिये ?

घायल०—(आँखें खोल कर) पानी, क्या नहीं मिलेगा....यहाँ कहीं ! आः आः —(फिर आँखें बंद कर लेता है ।)

आगं०—देर हो रही है। डाकुओं का डर है अपनी जान जोखम में कौन डाले। आप सुखी तो जग सुखी। यहाँ कहीं शहर में चली जा। मुझे देर हो रही है अभी चार कोस जाना है। क्या यहीं लूटा था। शहर के बाहर ही।

लड़की—(कुछ नहीं बोलती, केवल रोती है।)

घायल०—(कराहता है और पानी पानी बीच में चिल्ला उठता है।)

आगं०—बहुत दूर नहीं है, आध मील के लगभग शहर है। वहाँ इलाज इसका हो सकेगा। जाता हूँ। (गठरी संभाल कर चला जाता है उधर से एक आदमी और आता है।)

आगं—(ध्यान से देख कर) क्या हुआ। अरे रोती है क्या हुआ बता ! यह तेरा बाप है क्या ?

लड़की—हाँ, शहर से निकलते ही लट्ठ मार कर हमें लूट लिया !

आगं०—साँझ हो रही है। कुछ दीखता भी तो नहीं है साफ़ साफ़ ! अच्छा फिर !

घायल०—पानी......बेटी.......मैं अब न बचूँगा। हा......मेरी बेटी......।

आगं०—पानी चाहिए ठहरो मैं पानी लाता हूँ ! (वृद्ध को देख कर अपना कपड़ा फाड़ कर उसके सिर में पट्टी बाँधता है।) अँधेरा है, पानी से कुछ न होगा। पानी पीते ही यह ठंडा हो जायगा। तुम्हारे पास भी कपड़ा नहीं है। यह लो (अपनी चादर लड़की को देकर एक दम बाहर निकल जाता है और एक दो आदमी लालटेन लिये उधर आते हैं।)

पहला—(लालटेन उठा कर) क्या हुआ !

दूसरा—बीमार देख पड़ता है। लड़की तू कौन है ?

घायल०—हा......पानी......क्या एक घूँट पानी न मिल सकेगा! हा......ऐसे ही जीवन का अंत होगा।

लड़की—दादा, घबराओ मत। वह आदमी अभी पानी लेकर आ रहा है।

घायल०—नहीं बेटी, अब मैं न बचूँगा।

पहला—हुआ क्या?

दूसरा—चोट सी मालूम होती है? क्या किसी ने मारा है क्या?

लड़की—शहर से आ रहे थे रास्ते में लूट लिया चोरों ने सब छीन लिया।

पहला—(ध्यान से देख कर दूसरे से) है तो सुन्दर।

दूसरा—यह तुम्हारा कौन है?

पहला—इसका मालिक है।

दूसरा—शायद, कौन है री यह तेरा?

लड़की—तुम जाओ। कोई भी हो! (नीचा सिर किये बैठी रहती है।)

पहला—देख लड़की यह तो मर रहा है। अब इसके पीछे क्यों पड़ी है?

दूसरा—यह जगह भी बहुत भयंकर है! न मालूम कब क्या हो जाय।

पहला—इसकी जिंदगी का क्या ठिकाना है! चल मेरे साथ चल, मौज करेगी।

दूसरा—देखो रात हो रही है। हमें जल्दी थाने पहुँचना है। चलो, तुम्हारा नाम क्या है?

लड़की—(क्रोध से) हट जाओ, मुझे तुम से कुछ भी लेना देना नहीं है।

पहला—यह सिपाही है मालूम है अभी बंद कर देगा जेल में बहुत चीं चपड़ की तो। कौन है तू?

दूसरा—यह इसके साथ भाग कर आई है, चल थाने? (हाथ पकड़ता है।)

लड़की—(हाथ छुड़ाकर) छोड़ दो मुझे !

घायल०—(आँखें खोलकर) क्या संसार में कहीं भी न्याय नहीं है। तुम लोगों के क्या माँ बहन नहीं है ? (उठने को छटपटाता है पर उठ नहीं सकता। हाँफ कर लेट जाता है।) हाय राम ! आः (आँखें बंद कर लेता है।)

पहला—मक्कार है !

दूसरा—(लड़की से) देख, सीधी तरह से चली चल तो अच्छा। मौज में रहेगी ?

पहला—अच्छे-से-अच्छा खाना, अच्छे-से-अच्छा कपड़ा। क्यों इस बुड्ढे के साथ जिंदगी खराब कर रही है ?

(दूध तथा अन्य आवश्यक सामान लेकर उसी पहले आदमी का प्रवेश)

आगं०—लो, इसे दूध पिलाओ ! भाई ज़रा लालटेन देना। कैसी मुसीबत में हैं विचारे ! (बिना पूछे ही लालटेन लेकर दूध पिलाता है।)

पहला—(डाँट कर) बिना पूछे ही लालटेन ले ली ! लाओ इधर ? (छीनने लगता है।)

आगं०—अभी देता हूँ ! ठहरो न ज़रा ?

दूसरा—ये ही इसे भगाकर ले आया है। जानता है हम कौन हैं ?

पहला—ला, लालटेन, पाजी कहीं का ? (लालटेन उठाकर चलने लगता है।) चल करीम ?

दूसरा—सब गुड़-गोबर कर दिया ?

आगं०—(दूध पिलाकर उठता हुआ) चलो, मैं तुम्हें शहर लिये चलता हूँ। (लालटेन के प्रकाश में) कौन सुखदा ! तुम यहाँ कहाँ !

सुखदा—हाँ, डाकुओं ने हमें लूट लिया ! तुमने हमें बचा लिया !

पहला—तुम कौन हो जी इसके !

दूसरा—इसका यार मालूम होता है। चलो।

(इतने में बहुत से सिपाही थानेदार सहित वहाँ आजाते हैं। सूर्य घबरा जाता है, रघुनाथ उनके साथ है।)

रघुनाथ—यही है, शहर में चोरी करनेवाला, इस बुड्ढे को लूटने डाके डालने वाला सूर्यकुमार ?

सूर्य०—(उधर देखकर) राजाराम, इतना धोखा ?

रघु०—पकड़ लो इसको। यही बदमाश है।

(थानेदार सिपाही झपट कर उसे पकड़ लेते हैं तथा जेब से रिवालवर निकाल कर)

सब—यही चोर है। पकड़ लो।

सुखदा—यह चोर नहीं है। डाकू है जिसने हमें मारा।

पर्दा गिरता है।

—:०:—

तीसरा दृश्य

(सूर्यकुमार हवालात की कोठरी में बंद है, कोठरी के आगे बरामदा है वहाँ कुछ कुर्सियाँ पड़ी हैं। बाहर पुलिस का सिपाई पहरा दे रहा है, इतने में सुखदा आती है, सुखदा को देख कर आश्चर्य और उत्सुकता से सूर्यकुमार खड़ा हो जाता है। सिपाही सुखदा के हाथ की चिट देख कर उसे मिलने देता है दोनों आमने सामने खड़े होते हैं बीच में जंगला है लोहे का। समय बारह बजे दोपहर।)

सूर्य०—(जो पहले अपने ध्यान में चुपचाप बैठा था सुखदा को आया जान ध्यान से देखने लगता है और उठ कर जंगले के पास आ जाता है।) तुम!

सुखदा—हाँ ! (आँखों में आँसू भर आते हैं।)

सूर्य०—क्या है ?

सुखदा—तुम्हें देखने आई थी ! वह कौन था जो पुलिस को बुला कर ले गया था ! दादा को हस्पताल में दाखिल करा दिया है। उनकी मरहम पट्टी कर दी गई है। आशा है जल्दी ठीक हो जायँगे।

सूर्य०—(चुप रह कर) हूँ !

सुखदा—तुम्हारी कैसी तबियत है! रात तो मुश्किल से कटी होगी। कुछ खाना मिला?

सूर्य०—हाँ, कुछ खा लिया।

सुखदा—अब क्या होगा।

सूर्य०—मालूम नहीं।

सुखदा—तुम बहुत उदास देख पड़ते हो?

सूर्य०—(चुप)

सुखदा—यह कहने की आवश्यकता नहीं कि तुम ने ही दादा की जान बचाई। नहीं तो शायद......

सूर्य०—मुझे दुःख है मैं तुम्हारे पिता जी की पूरी सेवा न कर सका।

सुखदा—दादा चाहते हैं जितना रुपया लगे लगाकर तुम्हें बचाया जाय। वकील करके उसकी सलाह ली जाय।

सूर्य०—व्यर्थ है!

सुखदा—क्यों?

सूर्य०—मेरी रक्षा करने मुझे बचाने की कोई आवश्यकता नहीं है। बाहर भी मेरा कोई नहीं जहाँ जाकर रहूँगा।

सुखदा—ऐसा क्यों कहते हो, हम जो हैं?

सूर्य०—सुखदा तुम्हें नहीं मालूम, मैंने शहर में चोरियाँ की हैं, डाके डाले हैं, लोगों को लूटा है, इतने अपराध किये हैं; मैं अब कैसे छूट सकता हूँ। मैं चाहता हूँ मुझे सजा हो जाय!

सुखदा—(आँसू पोछती हुई) सब झूठ है। मैं नहीं मानती।

सूर्य०—झूठ कैसे है?

सुखदा—क्यों?

सूर्य०—मैं चोर हूँ, डाकू हूँ, मैंने चोरी की है, डाके डाले हैं।

सुखदा—चोरी करने डाका डालने वाले कभी नहीं कहते कि उन्होंने चोरी की है, डाका डाला है।

सूर्य०—(हँस कर) तो क्या कहते हैं ?

सुखदा—कोई भी झूठ बोलनेवाला यह नहीं कहता कि उसने झूठ बोला है। तुम ने कोई बुरा काम नहीं किया।

सूर्य०—तुम भोली हो सुखदा।

सुखदा—तुम भी भोले हो सूरज ! मुझे बताओ मैं किस तरह यह काम कर सकती हूँ। दादा चाहते हैं कि तुम्हें हर तरह से बचाया जाय।

सूर्य०—तो दादा को अच्छा होने दो वे जैसा चाहेंगे वैसा करेंगे तुम क्यों व्यर्थ में परिश्रम करती हो, जाओ।

सुखदा—(सोचकर) अच्छा तुम बताओ तो सही, मैं क्या करूँ, किस वकील के पास जाऊँ ? मैं तुम्हें इस हालत में नहीं देख सकती। (आँखों में आँसू छलछला आते हैं।)

सूर्य०—मैं तुम्हारी कोई सहायता नहीं चाहता। जाओ सुखदा, पिता जी की सेवा करो। (मुँह मोड़ लेता है। सुखदा फिर एकदम जोर से रोने लगती है।) क्यों रोती हो सुखदा ?

सुखदा—(मुँह मोड़कर) कुछ नहीं। मुझे नहीं मालूम था ?

सूर्य०—(सामने होकर) क्या ?

सुखदा—तुम इतने निर्मोही हो। तुम्हें अपने लिये नहीं तो किसी दूसरे के लिये ही जेल की यातना से छूटने का प्रयत्न करने में आपत्ति नहीं होनी चाहिये। मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ मुझे कोई उपाय बताओ। मैं सब कुछ करूँगी। सब कष्ट सहूँगी और तुम्हें...बचाऊँगी। (जंगले से ही बाहर गिर पड़ती है।)

सूर्य०—(प्रसन्नता और दुख से सुखदा की ओर देखकर) अरे उठो, पर यह तो बताओ यदि मैं फिर भी न बचा ?

सुखदा—क्यों न बचोगे, तुम ने कोई बुरा काम किया है। तुम चोर नहीं हो।

सूर्य०—तुम ने राजाराम को देखा है ?

सुखदा—कौन राजाराम ?

सूर्य०—वही जो पुलिस को बुलाकर लाया था।

सुखदा—हमारा विश्वास है उसीने हमें लूटा था। उस समय झुट-पुटा होने के कारण उसकी सूरत हमें साफ़ नहीं दिखाई पड़ रही थी। पर मैं उसकी आवाज तो पहचानती ही हूँ। मार-पीट छीनाझपटी में मुझे इतना मालूम है कि निश्चय वही था। दादा का भी ऐसा खयाल है। खैर, मैं पूँछ कर किसी वकील से सलाह लूँगी और फिर तुम्हारे पास आऊँगी। (विवशता दिखाती हुई) पर मैं गँवार हूँ नजाने यह काम कैसे होगा ?

सूर्य०—अच्छा, मैं तैयार हूँ परंतु मुझे विश्वास नहीं कि मैं छूट सकूँ ?

सुखदा—मैं राजाराम को पकड़वाऊँगी। उसी दुष्ट ने हमारा नाश किया है।

सूर्य०—(अपने ही ध्यान में चुप रहता है।) अच्छा, तुम जाओ सुखदा।

(एक तरफ़ से सुखदा चली जाती है और दूसरी तरफ़ से राजाराम आता है।)

राजा०—कहो सूर्य क्या हाल है देख लिया भलाई का आनंद। अभी क्या हुआ है देखते जाओ फाँसी दिलवा कर रहूँगा।

सूर्य०—पर मैंने तो तुम्हारा कुछ बिगाड़ा न था ?

राजा०—तुम ने सोते साँप को छेड़ा। मुझे मालूम हो गया कि मेरा तुम्हारा निर्वाह नहीं हो सकता। साफ़ बात तो यह है कि मेरा काम बन गया था। रुपया मुझे मिल ही गया। और अब तुम्हें अपने पथ से हटाना ही मेरा ध्येय है समझे ?

सूर्य०—मैं भी कहूँगा सब चोरियाँ राजाराम ने की हैं।

राजा०—राजाराम ने, हाँ कहो। पर तुम्हें बता दूँ राजाराम नाम का कोई व्यक्ति संसार में नहीं है। यदि ऐसा कोई व्यक्ति है तो मैं नहीं हूँ।

सूर्य०—(घृणा से मुँह फेर कर) जानता हूँ। तुमने मेरा सर्वनाश किया। मुझे जलेबी खिला कर विष खिलाया। जाओ जो कुछ तुम्हें करना हो करो। मैं सब कुछ सहने को तैयार हूँ।

राजा० —(हँस कर) अब जाने में भी कोई संदेह है? इसको कहते हैं बुद्धिमत्ता। साँप मरे लाठी न टूटे। (जाता है।)

(मजिस्ट्रेट के साथ थानेदार और कुछ सिपाही आते हैं, सूर्य जो फिर बैठ गया था उठकर खड़ा हो जाता है। मजिस्ट्रेट कुर्सी पर बैठता है, बंदी को बाहर निकाला जाता है।)

थानेदार—यही रात का डाकू है। शहर के बाहर उस बाग के पास इसने एक गाँववाले और उसकी लड़की को लूटा। यह खबर हमें कन्हैयालाल की मिल के मैनेजर बाबू रघुनाथ ने दी। हमारा खयाल है यही वह आदमी है जिसने शहर में चोरियाँ की, डाके डाले और पचासों आदमियों को लूटा है।

मजिस्ट्रेट—(ध्यान से देखता हुआ) तुम्हारा नाम क्या है?

सूर्य०—सूर्यकुमार।

मजि०—(लिखकर थानेदार से) इसका कोई वकील है?

थाने०—नहीं।

मजि०—(सूर्य से) तुमने कोई वकील किया है?

सूर्य०—नहीं।

थाने०—पुलिस इसका केस तैयार करने के लिये आठ दिन का अवकाश चाहती है।

मजि०—यदि यह वही आदमी है जिसने शहर में चोरियाँ की हैं, डाके डाले हैं तो मैं आठ दिन का रिमांड देता हूँ। अपराधी को अधिकार है कि अपने बचाव के लिये कोई वकील करना चाहे तो कर ले। उसके बाद मैं इसका बयान लूँगा। (उठता है)

थाने०—मैं इस पर ३७९ और ३९२ दोनों दफा के अनुसार अभियोग चलाना चाहता हूँ।

मजि०—ठीक है, रघुनाथ का बयान तुमने ले लिया ?

थाने०—जी, उस गाँववाले का बयान भी हम लेंगे। वह सवेरे बेहोश था अब शायद कुछ ठीक हो जाय उस लड़की का बयान भी मैं लूँगा। मेरा विचार है आठ दिन में मैं केस तैयार कर सकूँगा।

मजि०—अच्छी बात है। (हुक्म लिख कर देता है और चला जाता है। बंदी फिर भीतर बंद कर दिया जाता है। सब चले जाते हैं, केवल एक सिपाही बाहर पहरा देता है।)

सूर्य०—(सिपाही से) अब क्या होगा भाई ?

सिपाही—जो होगा सो देखते जाओ। मार पड़ेगी, पुलिस तुम से कहलायेगी कि तुमने चोरियाँ की हैं, डाके डाले हैं।

सूर्य०—(आश्चर्य से) मार क्यों पड़ेगी ?

सिपाही—इसी मजिस्ट्रेट के सामने तुम्हें सब चोरियाँ स्वीकार करनी होंगी।

सूर्य०—किसी ने चोरी न की हो तो ?

सिपाही—तो भी उसे कहना पड़ेगा, मानना ही पड़ेगा। यह पुलिस है मज़ाक नहीं। एकबार हमारे पंजों में फँसने पर आसानी से छुटकारा नहीं हो सकता समझे ? यहाँ पुलिस का राज्य है। बड़े बड़े आदमी ज़रा देर में चुटकी बजाते ठीक किये जा सकते हैं। तुम तो हो ही किस खेत की मूली और थानेदार बड़ा ज़ालिम है, बीसों आदमियों को इसने ठीक कर दिया है। हाँ, अगर कुछ चढ़ा सको तो शायद कुछ काम हो जाय।

सूर्य०—हूँ।

पर्दा गिरता है।

चौथा दृश्य

(अदालत का कमरा—दोपहर के दो बजे का समय। मजिस्ट्रेट तथा अन्य कर्मचारी बैठे हैं। मजिस्ट्रेट के दाहिनी ओर कटहरे के पास एक बैंच पर अनाथालय का मैनेजर सेठ हुकमचंद, रायसाहब कन्हैयालाल, रघुनाथ आदि बैठे हैं। दूसरी तरफ़ पुलिस से घिरा हुआ सूर्यकुमार बैठा है, कोर्ट इंस्पेक्टर कटहर के पास खड़ा होकर कह रहा है :—

कोर्टइंस्प०—अपराधी सूर्यकुमार के संबंध में मुझे यही कहना है कि इसने पिछले मासों में नगर में बहुत सी चोरियाँ की हैं, डाके डाले हैं। रायसाहब कन्हैयालाल के घर दो बार चोरी की। एक बार तिजोरी तोड़कर बारह हजार निकाल कर ले गया। उनके मुनीम से संध्या के झुटपुटे में रुपये छीन लिये। सेठ हुकमचंद से नगर के बाहर पुल के पास रुपये छीने। और भी कई छोटी मोटी चोरियाँ इसने की हैं। मालूम होता है इन चोरियों में एक और आदमी इसके साथ था उसका नाम राजाराम बताया जाता है। वह आदमी फरार है। पुलिस उसकी खोज में है। हमें निश्चय है शीघ्र ही हमें पकड़ने में सफलता मिलेगी। जिसका ब्यौरा और तारीख मेरे इस वक्तव्य में है। इसके अतिरिक्त पहले का 'कन्विक्शनशीट' चोरी का दंडपत्र भी इसके साथ जुड़ा है। सरकार देखें कि यह कितना भयंकर आदमी है। इस वक्तव्य में उन गवाहों के नाम भी हैं जो पुलिस की तरफ से अपनी साक्षी देंगे। (कागज सामने रखकर एक तरफ़ हट जाता है।)

मजि०—(कागज देख कर पढ़ता हुआ) पहला साक्षी!

(अनाथालय का मैनेजर आकर कटहरे के पास खड़ा हो जाता है, सत्य की साक्षी के बाद)

क्या तुम कह सकते हो कि इसने चोरी की?

मैने०—जी, यह चोर है।

मजि०—कहाँ कहाँ तुमने इसे चोरी करते देखा ?

मैने०—सेठ हुकमचंद के हाथ से रुपया छीनकर भागते मैंने इसे देखा। सेठ साहब जब शाम को अनाथालय से दान के रुपये लेकर जा रहे थे तो इसने पुल के पास एकांत समझ कर उनसे रुपया छीना। मैं पीछे आ रहा था। सेठ जी का चिल्लाना सुनकर दौड़ा। मैंने पास पहुँच कर देखा कि यह भागा जा रहा है। मैं दौड़ा भी पर पकड़ न सका। अँधेरा होने के कारण यह भाग गया। इसके पूर्व भी इसने अनाथालय में चोरी की थी।

मजि०—यह प्रश्न नहीं है कि पहले इसने चोरी की ? पर तुम कैसे जानते हो कि उस दिन भी यही था ?

मैने०—क्यों कि यह बहुत दिन मेरे पास रहा है, मैं इसकी चाल से, आकार से इसे पहचान सका। मुझे विश्वास है इसी ने सेठ साहब का रुपया छीना; पुरानी शत्रुता जो थी ?

मजि०—(सोचता हुआ) हूँ, अच्छा जाओ, ठहरो, (सूर्यकुमार से) तुम्हें कुछ पूछना हैं, तुम्हारा वकील कहाँ है ?

सूर्य०—मेरा वकील नहीं है। मुझे कुछ भी पूछना नहीं है।

मजि०—जाओ, दूसरा साक्षी ?

(रघुनाथ आकर कटहरे में खड़ा होता है सत्य की प्रतिज्ञा के बाद)

—तुम्हारा नाम क्या है ?

रघु०—मैं सेठ कन्हैयालाल की मिल का मैनेजर रघुनाथ हूँ।

मजि०—क्या तुम कह सकते हो कि इसने चोरी की, तुमने इसे चोरी करते देखा ?

रघु०—जी, एक बार नहीं कई बार। सेठ साहब के घर तिजोरी तोड़ रुपया लेकर भागते मैंने इसे देखा परंतु पकड़ न सका।

मुझे विश्वास है यही वह आदमी था। मैंने इसको एक बार अनाथालय के पास शाम के समय घूमते देखा परंतु अकेला होने के कारण पकड़ न सका। मैंने देखा कि इसके पास कोई शस्त्र भी है इसी डर से न पकड़ा। उसी समय सेठ हुकमचंद के रुपये छीन जाने का संवाद सुना इससे मेरा निश्चय और दृढ़ हो गया। अंतिम बार मैंने ही उस गाँववाले रामभोला को मार कर लूटते इसे पुलिस को पकड़वाया। (पीछे हट जाता है।)

मजि०—रामभोला कौन है, उसे लाओ ?

कोर्टइंस्पे०—वह अभी तक संज्ञाहीन है। अस्पताल में पड़ा है। यह डाक्टर का सार्टिफिकेट है। (देता है।)

मजि०—(सूर्यकुमार से) तुम्हें कुछ पूछना है ?

सूर्य०—मैं अपना वक्तव्य अंत में दूँगा।

मजि०—और कोई गवाह है ?

कोर्टइंस्पे०—सरकार, यह सेठ हुकमचंद हैं अनाथालय के मंत्री।

(सेठ हुकमचंद आता है।)

मजि०—क्या तुम अपराधी को पहचानते हो ?

हुकम०—जी।

मजि०—इसी ने पहली बार अनाथालय में चोरी की थी ?

हुकम०—जी।

मजि०—दूसरी बार भी इसी ने तुम्हारे रुपये छीने थे ?

हुकम०—मालूम तो यही होता है !

मजि०—कैसे जानते हो ?

हुकम०—यह मेरे अनाथालय में कई साल तक रह चुका है। मैं जानता हूँ यह बहुत खराब आदमी है। उस दिन साँझ को मैं अकेला आ रहा था कि पीछे से इसने मेरे सिर पर एक

डंडा मारा। मैं आघात सह नहीं सका और गिर पड़ा; गिरते गिरते मैंने पहचाना कि यह वही सूर्यकुमार है, परंतु मैं असहाय था। इसने अनाथालय के रुपये मुझ से छीन लिये। मैं विश्वासपूर्वक कह सकता हूँ यह वही है।

मजि०—(सूर्यकुमार से) तुम्हें कुछ कहना है ?

सूर्य०—जी नहीं।

मजि०—(कोर्टइंस्पेक्टर से) और कोई ?

कोर्टइंस्पे०—रायसाहब सेठ कन्हैयालाल भी इस संबंध में अपनी साक्षी देंगे।

मजि०—(रायसाहब से) आपको इस अपराधी के संबंध में कुछ कहना है, इधर आइये ?

(कन्हैयालाल कटहरे के पास खड़ा हो जाता है।)

मजि०—आप इस अपराधी को जानते हैं ?

कन्हैया०—यह मेरे अनाथालय का लड़का था पर......।

मजि०—कभी चोरी के अपराध में इसे आप ने पकड़वाया था ?

कन्हैया०—जी।

मजि०—क्या इसने चोरी की थी ?

कन्हैया०—यह मैं ठीक नहीं जानता...। (इतने में कचहरी में दो स्त्रियाँ आ जाती हैं। कचहरी में एक दम कुछ खलबली मच जाती है। स्त्रियाँ अपने अपने प्रार्थनापत्र पेश करती हैं।)

मजि०—(प्रार्थनापत्र देखकर) इस अभियोग में ठीक ठीक कुछ भी समझ में नहीं आ रहा है अच्छा, मैं नियम-विरुद्ध भी तुम्हारी बातें सुनना चाहता हूँ कहो ?

पहली स्त्री—मैं कहती हूँ कि सूर्यकुमार निर्दोष है। इसने पहली चोरी नहीं की थी। (मैनेजर और मंत्री की ओर संकेत करके) इन दुष्टों ने इसे फँसाया। जबरदस्ती उसे चोरी में दंड दिलाया! ये दोनों अनाथालय के रुपये लूटते थे मिल कर।

मजि०—(आश्चर्य से) तुम कौन हो ?

पहली स्त्री—इस मैनेजर की स्त्री। ये सब लोग मिल कर रुपये उड़ाते थे। जब सूर्य ने इनका भंडा फोड़ने की धमकी दी तो चोरी के अपराध में उसे फँसा कर जेलखाने भिजवा दिया। इस बेइमान मैनेजर ने मंत्री के साथ मिल कर खूब रुपया खाया। रोज घी बेचा जाता था, आटा बेचा जाता था, बर्तन बेचे जाते थे, एकबार सेठ धनपतमल के यहाँ से ईंटें मकान बनाने के लिये आईं वे मंत्री के घर गईं। आटे की बोरियाँ भी मंत्री के घर जाती रही हैं।—सेठ हुकमचंद......।

मैने०—झूठ है। यह स्त्री पागल है।

मजि०—(उसकी ओर ध्यान न देकर) तो तुम्हारे विचार में यह निर्दोष है ?

पहली स्त्री—जी, सर्वथा निर्दोष।

मजि०—पहली बार जब यह पकड़ा गया था तो तुमने कोर्ट में क्यों न कहा ?

पहली स्त्री—मैं उस समय ठीक तरह से विरोध न कर सकी। जब मैंने अपने पति से इस निरपराध को दंड दिलाने का घोर प्रतिवाद किया तब मुझे घर में बंद कर दिया गया।

मजि०—अच्छा, जाओ।

पहली स्त्री—मेरा विश्वास है इस ने कोई चोरी नहीं की। इसके ऊपर झूठा कलंक लगाया गया है।

(दूसरी स्त्री आगे बढ़कर)

दूसरी०—मैं भी कुछ कहना चाहती हूँ।

मजि०—क्या ?

दूसरी०—जिस अपराध में सूर्यकुमार को पकड़ा गया है, उसमें वह निर्दोष है।

कन्हैया०—बड़ा आश्चर्य है ? तो पहली बार क्या मैंने इसे व्यर्थ ही फँसाया ?

मजि०—कैसे ?

सुखदा—मैं रामभोला की लड़की हूँ, जो अब हस्पताल में ठीक हो रहा है। मेरे पिता को और मुझे सूर्यकुमार ने नहीं, रघुनाथ ने लूटा है। इसी ने मार कर मेरे पिता से दो सौ रुपये छीने। हम लोग उस दिन बाज़ार लौट रहे थे। (रघुनाथ बाहर खिसकने लगता है।) देखो, यह जा रहा है। मैंने थानेदार से कहा कि मेरा बयान लो पर मुझ से कुछ भी न पूछा गया।

मजि०—(सिपाही से) इस रघुनाथ को पकड़ो।

(सिपाही रघुनाथ को पकड़ते हैं।)

रघु०—यह मेरा अपमान है मजिस्ट्रेट साहब ! मैं रायसाहब सेठ कन्हैयालाल की मिल का मैनेजर हूँ। मेरी प्रतिष्ठा का ध्यान कीजिये।

मजि०—यह अभियोग पेचीदा है, इस लिए मैं आज्ञा देता हूँ जब तक केस का निर्णय न हो तब तक तुम्हें हिरासत में रखा जायगा।

(रामभोला का एक डोली में प्रवेश। दो गाँव वाले उसे उठाकर मजिस्ट्रेट के सामने पेश करते हैं। मजिस्ट्रेट चकित होकर पूछता है।)

—क्या यही रामभोला है ?

राम०—जी, मैं ही रामभोला हूँ।

मजि०—तुम्हें क्या कहना है ?

राम०—सरकार, सूर्यकुमार ने मुझे नहीं मारा, इस पाजी ने (रघुनाथ की ओर संकेत कर के) मेरा सिर फोड़कर मेरी कमाई के रुपये छीने हैं। इसका नाम राजाराम है। मेरी लड़की ने भी सूर्यकुमार के पकड़े जाने के समय इस बात का विरोध किया था।

रघु०—यह पागल है। मैं तो मिल का मैनेजर हूँ। यह पागल है।

राम०—मैंने इसे एकबार अपने गाँव के पास भी देखा था। इसके पास बहुत से रुपये थे। मैंने समझा यह भला आदमी होगा। फिर पिछली बार इसने ही मुझे लूटा और मारा, मुझे बचाने वाले सूर्यकुमार को पुलिस के हाथों पकड़वा दिया। (थक-कर चुप हो जाता है। इसी समय कचहरी में एक स्त्री धीरे धीरे आती है।)

कन्हैया०—(एक उचटती दृष्टि से) तुम सुषमा, तुम कैसे ?

स्त्री—(बेंच पर बैठती हुई) यही है वह सूर्यकुमार, जिसके लिये मैं इतने दिनों तक कष्ट में रही हूँ, जिसकी चिंता में मुझे दिन रात घुलना पड़ा है। यही है वह सूर्यकुमार मेरा भतीजा ? अभी अभी एक वृद्ध ने मुझे इसका सब इतिहास सुनाया है। (खड़ी होकर) बिलकुल वही चेहरा है। सब कुछ वही। सेठ का लड़का सूर्यकुमार। (सूर्यकुमार हैरान रह जाता है इतने में लकड़ी टेके एक वृद्ध आदमी का प्रवेश। सूर्यकुमार और कन्हैयालाल को देखकर) यही वह बूढ़ा है ? इसी के कहने से मैं यहाँ आई हूँ। आज मेरा जीवन सफल हो गया।

कन्हैया०—नहीं यह नहीं हो सकता। यह तो मेरे अनाथालय का लड़का सूर्यकुमार है चोर, डाकू और न जाने क्या क्या ? अरे आज तुम कैसी हो गई ?

वृद्ध०—(सूर्यकुमार के पास जाकर जोर से) तुम यहाँ हो। सेठ माधोलाल के लड़के सूर्यकुमार का यह अंत ! हा, मैं मर क्यों न गया ?

कन्हैया०—(आश्चर्य से दौड़ कर) क्या कहा मदनलाल के भाई सेठ माधोलाल? कौन सेठ माधोलाल ? बोलो जल्दी बोलो, बोलो, कौन सेठ माधोलाल, क्या मेरा भाई, तुम कौन हो ?

वृद्ध०—हाँ, सेठ माधोलाल ? यह उन्हीं का लड़का है जिसको...
(कन्हैयालाल दौड़ कर बुड्ढे का मुँह दबा देता है इतने में कन्हैयालाल

स्त्री की सूरत देखकर एकदम पीछे हट जाता है दर्शकों की गैलरी में बैठा मदनलाल एकदम खड़ा हो जाता है ।)

मदन०—यह मैं क्या देख रहा हूँ । यह तो शोभा है शोभा ?

शोभा —हाँ, मैं शोभा हूँ।

कन्हैया०—(आश्चर्य से) शोभा !

मदन०—शोभा ! तुम यहाँ कैसे ?

सूर्य०—(आश्चर्य में भर कर वृद्ध से) तुम कौन हो ?

वृद्ध०—(हाथ हटा कर) अब कहने दो न, एक बार खुल कर कहने दो सेठ साहब ?

(कन्हैयालाल कुछ सोचता सोचता पीछे हट जाता है और एकदम स्टेज से बाहर हो जाता है ।)

शोभा—तुम भी आओ देखो न ?

मदन०—तुम भी अजीब पागल हो, अरे यह तो नाटक है ?

(बैठ जाता है ।)

वृद्ध—(सूर्यकुमार) बेटा, मैं तुम्हारे पीछे छाया की तरह घूमता रहा हूँ ।

रामभोला और सुखदा—तुम्हीं उस दिन गाँव में आये थे न ?

वृद्ध—(दर्शकों की तरफ मुँह करके) मैं डंके की चोट कह सकता हूँ कि यही असली मदनलाल सेठ का भतीजा सूर्यकुमार है । यह नाटक नहीं वास्तविकता है ।

(सेठ मदनलाल फिर एकदम उचक कर खड़ा हो जाता है ।)

मदन०—तो क्या यही मेरे भाई माधोलाल का लड़का है ?

वृद्ध—हाँ यही, बिलकुल यही । देख लो यह है कि नहीं । देखो, आँखें खोल कर देखो । पहचानो, मदनलाल यह तुम्हारी... ।

शोभा—(उठकर) चेहरा मोहरा सब कुछ वही है मानों जवानी में भरे हुए तुम्हारे भाई हों । रूप रंग सब कुछ वही है देखो, देखो न ?

मदन०—पर यह तो नाटक है न ? नाटक सत्य कैसे हो सकता ? है ? मुझे अश्चर्य है कि यह नाटक जैसे किसी ने मेरे ही ऊपर लिखा है। घोर आश्चर्य है ?

शोभा—यह वास्तविक नाटक है जो संसार में कभी कभी देखने में आता है। आओ, अपने भतीजे को देखो, कुचक्र में पड़ कर पवित्र मनुष्य भी कैसा हो जाता है, यह देखो।

मदन०—(स्टेज पर जाकर वृद्ध से) तुम कौन हो ? ऐसा मालूम होता है मैंने तुम्हें कहीं देखा है ?

वृद्ध—हाँ, तुमने मुझे अवश्य देखा है। मुझे ही तो तुमने दो हजार के नोट दिये थे न परन्तु... !

मदन०—(दौड़ कर) नहीं वह बात कहने की आवश्यकता नहीं है। नहीं, (वृद्ध का मुँह बंद करके) वह सब मत कहो, मत कहो (चिल्ला कर) मैं जी न सकूँगा। मत कहो। मैं जानता हूँ। मुझे सब याद है। हाय राम रे, (बैठ जाता है।)

वृद्ध—(उसी धुन में) परन्तु मैंने वैसा नहीं किया। चार साल तक मैं इसे पालता पोसता रहा। एक दिन मेरा रुपया चोरी होगया, एक छोटी लड़की थी उसका अचानक देहान्त होगया। मैं पागल सा हो गया। दिन दिन भर बाहर मारा फिरता। एक दिन लौट कर देखा कि सूर्यकुमार घर नहीं है। ढूँढ़ते और मानसिक चिन्ता में मैं बीमार पड़ गया। बहुत दिन बाद मैंने सुना कि वह किसी नगर के अनाथालय में है। ढूँढ़ते ढूँढ़ते मैंने यहाँ आकर इसे देखा, पर मैं भिखारी किस बूते पर इसे लौटाता, प्रमाण भी तो नहीं था ? सोचा चलो पल तो रहा है।

मदन०—(सोचकर) मुझे याद आ रहा है। इसे हमने एक दिन घूमने वाली जाति के चुंगल से निकाला था। यह वही होगा।

हाय, मैं बड़ा पापी हूँ। मैं कैसा पापी हूँ इतने पास रहने पर भी मैंने इसे नहीं पहचाना। (चिल्लाकर) मेरा पाप सूर्यकुमार की दुर्दशा बनकर आया है। मैं देख रहा था जैसे सब कुछ मेरी कहानी बनकर धीरे धीरे आती जा रही है। मैं हैरान था, जो भी कुछ हो इस नाटक ने मेरी आखें खोल दी हैं। (सूर्यकुमार के पास जाकर उससे चिपट जाता है और जोर जोर से चिल्लाने लगता है) अरे, क्या तुम्हीं मेरे भाई के लड़के हो? आज मेरी आँखें खुल गईं? (सूर्यकुमार को छोड़कर) बिलकुल वही चेहरा है। बिलकुल वही। हाय, मैं आज से पहले तुम्हें क्यों न पहचान सका? आज मेरा कर्म इस नाटक का रूप बनकर चमका है। (रोता हुआ) हे बेटा, मैंने ही तुम्हारी यह दशा की है। (सुधबुध खोता है) मजिस्ट्रेट साहब, यह मेरा भतीजा है सूर्यकुमार? हे ईश्वर, मेरे पाप का प्रायश्चित न जाने क्या होगा? (उसी धुन में सूर्यकुमार को बँधा देखकर) छोड़ दो, इसको छोड़ दो। हाय, मैं कैसे संसार को मुँह दिखाऊँगा। (सूर्यकुमार को बन्धन से छुड़ाना चाहता है)

सूर्य०—(गुमसुम सा रहकर) बड़ा आश्चर्य है? चाचा जी?

(मदनलाल के पैरों पर गिर पड़ता है, मदनलाल सूर्यकुमार को गले से चिपटा लेता है।)

पर्दा गिरता है

समाप्त

—:०:—